# सांस्कृतिक कहानियाँ

## भाग १२



# सांस्कृतिक कहानियाँ

[ भाग - १२ ]

सुदर्शन सिंह 'चक्र'





प्रकाशन विभाग
श्रीकृष्ण - जन्मस्थान - सेवा संस्थान
मथुरा - २८१००१ (उ० प्र०)

मूल्य—दो रुपया मात्र

इस पुस्तकके ६४ पृष्ठ भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर उपलब्ध किये गये कागजपर मुद्रित-प्रकाशित हैं ।

| | |
|---|---|
| प्रकाशक | श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंस्थान |
| प्रकाशन-तिथि | रथ-यात्रा, वि सं० २०३६<br>२६ जून, १९७९ |
| प्रथम संस्करण | ५२०० प्रतियाँ |
| मुद्रक | राधा प्रेस,<br>गान्धीनगर, दिल्ली-११००३१ |

SANSKRITIK KAHANIYAN—Part XII

—Sudarshan Singh 'Chakra'

मूल्य — दो रुपया मात्र

# प्राक्कथन

अनेक बर्षों तक 'कल्याण' (गोरखपुर) में मेरी कहानियाँ निकलती रहीं हैं। बहुत लोगोंका आग्रह था कि इन्हें संकलित कर दिया जाय । यह संकलन अब हो सका है और श्रीकृष्ण-जन्मस्थान प्रकाशनसे 'सांस्कृतिक कहानियाँ' नामसे अनेक भागोंमें निकल रहा है। अब तक १२ भाग छप चुके हैं।

इस संग्रहमें 'कल्याण' में निकली कहानियाँ तो हैं ही, अन्यत्र छपी कहानियाँ भी हैं।

मैंने कहानी लिखना ही प्रारम्भ किया किसी तथ्यको समझानेके लिए। धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक विषयोंमें लेखोंके द्वारा जिन्हें समझाया जाता है, उन्हें मैंने कहानी द्वारा समझानेका प्रयत्न किया है।

इतिहास, भूगोल अथवा आधिदैवत जगतका भी वर्णन जो दिया गया है, यथासम्भव स्पष्ट है। इनसे भी पाठकको परिचित कराया गया है।

घटनाएँ और पात्र सभी कल्पित नहीं भी हैं— तो भी उनको सत्य बतलानेका प्रयत्न नहीं हैं। अत: घटनाओं तथा नामोंके पीछे मत पड़ें, कहानीमें प्रतिपादित तथ्यको ग्रहण करें।

कलाके लिए नहीं, सत्प्रेरणाके लिए लिखी गयी इन कहानियोंसे पाठकको लाभ हो तो मेरा प्रयत्न सफल है; भले कहानी-कला इनमें न मिलती हो।

अच्छा होगा कि इन कहानियोंके तीन भाग निकल जानेके बाद आप इन्हें मँगाया करें, इसमें डाक-व्यय कम लगेगा। नहीं तो आजकल डाक-व्यय पुस्तकके मूल्यसे अधिक हो गया है। अग्रिम भेजते समय आप जैसा लिखेंगे वैसी व्यवस्था कर दी जायगी।

—'चक्र'

**श्रीकृष्ण जन्मस्थान,**
**मथुरा**

# अनुक्रमणिका





# जिन्हें दोष नहीं दीखते

'आप निर्दोष हैं। आराध्यका आदेश पालन करनेके अतिरिक्त आपके पास और कोई मार्ग नहीं था।' आचार्य शुक्र आ गये थे आज तलातलमें। पृथ्वीके नीचे सात लोक हैं—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल। इनमें तीसरा लोक सुतल भगवान् वामनने बलिको दे रखा है। उसके नीचे अधोलोकोंका मध्य लोक तलातल मायावियोंके परमाचार्य परम शैव असुर-विश्वकर्मा दानवेन्द्र मयका निवास है। सुतलमें बलिकी प्रतिकूलताका प्रयत्न करनेवाले असुरोंको दण्ड देने श्रीनारायणका सुदर्शन चक्र यदा-कदा चक्कर लगा लेता है और अधोलोक प्रायः सभी उसके प्रशासनमें हैं; किंतु तलातलमें वह कभी नहीं जाता। भगवान् त्रिपुरारिका लाड़ला भक्त मय—उसके आश्रितोंको चक्रसे कभी भय नहीं हुआ।

'दानवेन्द्र अत्यन्त दुखी हैं। पूरे सात दिनोंसे उन्होंने जल ग्रहण नहीं किया।' अनुचरोंको कोई मार्ग नहीं सूझा तो वे सुतल आचार्य शुक्रके चरणोंमें पहुँचे। आचार्य अपने मुख्य यजमान असुरेन्द्र बलिके समीप ही रहते हैं; किंतु दानव तथा राक्षसोंके भी वही कुलगुरु हैं। वही विपत्तिके सहायक तथा मार्गद्रष्टा हैं। दानवोंको लगा कि आचार्य ही कोई सुलझाव निकाल सकते हैं।

'भगवान् चन्द्रमौलिके श्रीचरणोंमें श्रीकृष्णचन्द्रकी अत्यन्त अनुरक्ति है।' आचार्य कह रहे थे—'और श्रीगङ्गाधर भी द्वारकानाथसे अत्यन्त स्नेह रखते हैं।

उमाकान्तने जब यह विधान किया, उसे सम्पन्न करनेमें श्रीकृष्णके प्रति कहीं अश्रद्धा या अपकारका भाव नहीं आता और सत्य तो यह है कि शिवने एक क्रूर शलभको केवल दीपकके समीप भेजा। उस अप्रतिहत शौर्यका न सौभ कुछ बिगाड़ सकता था, न शाल्व। अब तो समाप्त भी हो चुका यह प्रसङ्ग। शाल्वको चक्रकी धाराने निर्वाण दे दिया।'

'भगवन्! मेरे आराध्य भगवान् चन्द्रमौलि और श्रीकृष्णचन्द्रमें कोई अन्तर है, यह कलुष इस जनके अन्तरमें कभी नहीं आया। वे करुणावरुणालय कृत्तिवास रहें या पीताम्बर परिधान, विश्वके परमकारण-कारण वही हैं। लीलारूप उनके थे और रुचिवैचित्र्यके कारण उनका त्रिलोचन-रूप इस जनको प्रिय है। वे दोष नहीं देखेंगे, जानता हूँ; क्योंकि उन्हें कभी किसीके दोष दीखते नहीं। वे उत्तमश्लोक—उन्हें दोष देखना आता ही नहीं।'

'मेरा अमरत्व उस दिन अग्निकी ज्वालामें भस्म ही हो चुका था। मैंने उस दिन प्रत्यक्ष देखा श्रीकृष्णका प्रभाव। महेन्द्रकी वर्षा और उनका वज्र व्यर्थ हो गया था। मैं इतना अज्ञ नहीं था कि इसे अर्जुनके शरोंका चमत्कार मान लेता।' दो क्षण मयको अपना गद्‌गद स्वर सम्हालनेमें लगे और फिर वे बोले—'श्रीकृष्णकी इच्छाका प्रताप था वह और उस इच्छाने उस दिन अग्निको जो सामर्थ्य दी थी—मय उन लपटोंमें तृणके समान भस्म हो जाता; किंतु इस अधम सुर-शत्रु दानवकी कातर

पुकार उन्होंने सुन ली। कोई आर्त पुकार उनके श्री-चरणोंसे निराश नहीं लौटी। मयका यह शरीर, इसका जीवन श्रीकृष्णका कृपाप्रसाद, और कोई सेवा उनकी यह नहीं कर सका।'

'वे हैं ही कृपा-विग्रह। बलिपर जो अचिन्त्य अतक्र्य अनुग्रह उन्होंने किया।' आचार्य शुक्रका कण्ठ भी भर आया—'उनकी अहैतुकी असीम कृपाका मुझसे अधिक प्रत्यक्ष साक्षी और कौन होगा। वे त्रिभुवननाथ मेरे यजमानके द्वारपर गदापाणि द्वारपाल बने खड़े हैं। उन्होंने मुझसे यहाँ आते समय कहा है—'मय बहुत भावप्रवण है। उसे आश्वस्त करो आचार्य!'

'वे दयाधाम तो कहेंगे ही!' मय क्रन्दन कर उठे—'मेरे सचिव कहते हैं कि मैं द्वारका जाकर श्रीकृष्णचन्द्रसे क्षमा-याचना करूँ। अज्ञ हैं वे। उन उदार चक्रचूड़ामणिसे भी क्या क्षमा-याचन करनी पड़ती है? किसीके अपराध उनके विशाल नेत्र देख भी पाते हैं कि क्षमा माँगी जाय? मैं चला ही जाऊँ। तो वे कहेंगे—'मय! तुम भी यह पागलपन करते हो। मैं भला तुमसे रुष्ट हो सकता हूँ कभी?'

'लेकिन यह कृतघ्न!' मयने मस्तक पटक दिया भूमिपर। उनकी अन्तर्वेदनाका अन्त नहीं था। 'भगवान् गङ्गाधरने सौभ-निर्माणकी आज्ञा इसी पापिष्ठको दी—इसीलिए तो कि इसके अन्तरमें कहीं असुर-द्वेष छिपा था। कोई कल्मष कहीं चित्तमें न होता - जो अपने संकल्प-मात्रसे त्रिभुवनकी सृष्टि कर सकते हैं, शाल्वको एक

विमान नहीं प्रकट करके दे सकते थे ? जिन्होने मुझे जीवनदान दिया, उनके शत्रुको उन्हींके नगर एवं जनोंको उत्पीड़ित करनेके लिए इन करोंने सौभजैसा दूर्भेद्यप्राय विमान अर्पित किया। मुझे ही इस कर्मका भार आराध्यने क्यों दिया आचार्य ?'

आचार्य क्या उत्तर दें। भगवान् भूतनाथके संकल्प या कर्मका हेतु जाननेमें तो आचार्यकी सर्वज्ञता समर्थ नहीं है। उन लीलामयकी लीला ; किंतु इस मयको आचार्य कैसे समझायें ? यह वे स्वयं नहीं समझ पा रहे हैं।

'मैं कितने भी वर्ष उपोषित रहूँ, मर नहीं सकता। भगवान् शंकरने मुझे अमरत्व दिया है।' दानवेन्द्र रुदन कर रहे थे—'खाण्डव-दाहमें अग्नि मुझे अंधा, पंगु बना दे सकता था। अर्जुनके बाण मयको लुञ्ज-पुञ्ज करके धर देते। मयका अमरत्व विडम्बना बनकर रह जाता और आज वह विडम्बना बन गया है कि मय देह त्यागकर अपनी कृतघ्नताका प्रायश्चित करनेमें भी समर्थ नहीं है। श्रीकृष्णकी दृष्टिमें मयका कोई अपराध नहीं। आप भी कह लें कि मय निर्दोष है ; किंतु स्वयं अपनी दृष्टिमें मयने जो घोर कृतघ्नता की है शाल्वको द्वारकापर आक्रमणके लिए सौभ-विमान निर्मित करके देनेकी…।'

'किंतु स्वेच्छासे तो नहीं किया तुमने यह !' आचार्य फिर बोले। लेकिन अपने प्रयत्नकी निष्फलता वे समझ चुके थे। उनकी वाणीमें उत्साह नहीं था—'अपने मित्र शिशुपालके वधसे क्रोधाविष्ट शाल्व तप कर रहा था।

पूरे वर्षभर मुट्ठी भर रेत प्रतिदिन खाकर वह आशुतोषकी आराधना करता रहा। भगवान् शिव उपेक्षा कर देते उसकी ? तुम तो निमित्त बने आराध्यके आदेशको पूर्ण करनेमें।'

'मैं ही क्यों निमित्त बना ?' मयके इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं था। 'मैं इस कृतघ्नताके लिए क्यों चुना गया ?'

'यदि तुम एक बार द्वारकेशके दर्शन कर आते ?' आचार्य भी अनुरोध ही कर सकते थे।

'क्या मुख लेकर जाऊँगा वहाँ ?' मयका रुदन फूट पड़ा 'उनके सम्मुख कैसे जाऊँगा ? नहीं ! नहीं जा सकेगा मय उन दयाधामके सम्मुख।'

× × ×

'चक्र ! तलातलमें यह सहस्रार चक्र गया !' आचार्यके मुखसे चीत्कार निकल गया। सहस्र-सहस्र सूर्य एक साथ उदय हुए हों ; ऐसा महाप्रकाश। इस चक्रको आचार्य कैसे भूल सकते हैं ; किंतु तलातलमें तो यह आया नहीं करता और आज...... !

'आओ ! इस अधमको अपनी महाज्वालासे परिपूत करो परमास्त्र !' मयने दोनों हाथ जोड़े—'आपके वेगको कोई वरदान, कोई प्रभाव प्रतिहत नहीं कर पाता ! मयके चित्तमें जो दारुण दावानल धधक उठा है, आपके तेजमें देह दग्ध हो तो शान्ति मिले उससे। आओ ! कृपा करके पधारो !'

'महाभागवतोंकी केवल वन्दना कर सकता है यह !' आचार्य और मय दोनों इस मेघ-गम्भीर स्वरसे चौंके। आचार्यका चिरपरिचित है यह स्वर और वही स्वर तो है जिसे मयने खाण्डव-दाहके समय सुना था। नेत्र खोलकर त्वरापूर्वक मय आचार्यके साथ उठ खड़े हुए।

'देवेन्द्रको लगा कि इस समय दानवेन्द्र असावधान है तो तलातलके अपने शत्रुओंको वे कुछ कम कर लें ! स्मितशोभितानन भगवान् वामन-सम्मुख चले आ रहे थे—'किंतु अब ये स्वयं लज्जित हैं अपने कृत्यपर। इन्हें क्षमा कर दो दानवेन्द्र !'

अब आचार्य तथा मयने देखा कि भगवान् वामनके पीछे नतमस्तक वज्रपाणि इन्द्र संकुचित खड़े हैं। उन्हें कहाँ आशा थी कि उपेन्द्रके ही हाथों उन्हें यह पराभव प्राप्त होगा। किंतु ये उपेन्द्र – ये किसीके हैं तो केवल अपने जनोंके, अन्यथा इनकी गति कब किसकी समझमें आयी है।

'मय प्रमत्त हो सकता है। वह प्रमाद कर सकता है, दानवेन्द्रने भगवान् वामनके चरणोंपर मस्तक रखनेके पश्चात् कहा—'किंतु सुतलके संरक्षककी सावधानीमें अन्तर पड़ेगा, अथवा मयपर उनका अनुग्रह कम है, यही समझकर देवराजने भूल की और जब मेरे स्वामीने उन्हें क्षमा कर दिया, तब मेरे तो ये सम्मान्य हैं !'

'आप इन्हें अनुमति दें अमरावती जानेकी।' भगवान् वामनने ही कहा—'आपकी अनुमतिके बिना ये जायँ तो वह जो महाचक्र ऊपर घूम रहा है···।'

'ओह ! तो आज देवेन्द्रको ज्ञात हुआ कि श्रीकृष्णका चक्र केवल देवताओंका संरक्षक नहीं है।' मयके मुखपर हास्य आया—'आज देवाधिपको उसने बंदी किया है !'

'दानवेन्द्रके बंदी हैं ये।' आचार्यने सूचित किया, यद्यपि अनावश्यक था यह।

'आप सम्भवतः दानवका आतिथ्य स्वीकार नहीं करेंगे।' मयने देवेन्द्रको अङ्कमाल देकर विदा दी—'अतः प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान करें।'

'मयके लिए द्वारका भी दूर नहीं है। वह दूर भी हो तो सुतल तो समीप ही है।' भगवान् वामन इन्द्रके चले जानेपर मयके हाथको अपने हाथमें लेकर बड़े कोमल स्वरमें कह रहे थे—'दानवेन्द्र भूल जाते हैं कि उनकी व्यथा किसी औरको भी व्यथित करती है। कोई भक्तिपूत हृदय जब व्यथित होता है, श्रीकृष्णचन्द्रको द्वारकाकी सुकोमल रत्नशय्या सुख नहीं दे पाती ! अन्ततः कोई बात भी हो !'

'प्रभु ! दयामय !' मयने दोनों भुजाओंमें बाँध लिये वामनके चरणकमलद्वय और उनपर मस्तक रखकर उन्हें अपने अश्रुओंसे सिक्त करने लगे।

'उठो वत्स !' भगवान्ने उठाकर हृदयसे लगाया मयको—'भगवान् शंकरको तुम जितने प्रिय हो, श्रीकृष्ण-का स्नेह उससे अधिक ही तुम्हें प्राप्त है।'

---

# अवतंसिका

'शुभम् भूयात् !' अपने वलीपलित गौरवर्ण करको महर्षिने अपने चरणोंपर पड़े अपने सबसे बड़े शिष्यकी घूमिल जटाओंसे मण्डित मस्तकपर इस भाँति रखा, जैसे एक पंच दल अरुण सरोज उनपर रख दिया गया हो। 'नित्य-कर्मसे निवृत्त हो चुके ?' अपने ऐणेयाजिनके आसनपर तनिक सीधे होकर महर्षिने इस प्रकार पूछा, जैसे वे कोई गम्भीर निर्देश देनेके लिए उसीकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

'निवृत्त हो चुका भगवन् !' प्रबुद्ध अपना मस्तक उठा चुका था। उसका नासिकाग्र एवं भाल धूलिसे शोभित हो उठा था। घुटनोंके बल करबद्ध बैठे उस तप्त ताम्रवर्ण युवकके बड़े-बड़े नेत्र संकोचसे झुक गये।

'जानता हूँ वत्स' महर्षिने शिष्यके संकोचको देख लिया। उनकी वाणी गम्भीर हो गयी। 'मन एकाग्र नहीं होता। इन क्रिया-कलापोंमें आन्तरिक रुचि नहीं है। सब भय और संकोचसे।'

मेरा अन्तः कालुष्य। पूर्वकृत पापोंका प्रोत्थान।' उसके कमल दृगोंसे विन्दु श्रवित होने लगे। 'श्रीचरणोंमें इतने दिनों रहकर भी मैं अभी उसी अन्धकूपसे परित्राण पानेमें समर्थ नहीं हो पाता।' हिचकियाँ बँध गयीं।

'सो कुछ नहीं !' समीपके हविष्यसे प्रज्ज्वलित ब्राह्म अग्निकुण्डकी ओर एक दृष्टि डालकर महर्षिने कहा,

'केवल अधिकार भरे।'

'समझ नहीं सका।' स्वरमें आश्वस्त होनेके पर्याप्त लक्षण थे। 'क्या दो क्षणके लिए आज्ञा होगी? कामदा मुझे पुकार रही है।' वह अचानक चंचल हो उठा था।

पास ही एक कर्पूर धवल गौ अशोकके मूलमें स्वच्छन्द खड़ी थी। स्थिर, शान्त। उसका सुपुष्ट अंग अचानक आकर्षित कर लेता था। मस्तकपर कुंकुमका तिलक, शृंगोंमें मालतीकी सुरभित मल्लिका—निश्चय ही वह ऋषिकी चर्चित होम धेनु थी।

दुग्ध-पानसे परितप्त उसका दुग्ध-धवल वत्स हवन कुण्डोंके चतुर्दिक, आसनों एवं वेदिकाओंपर निर्द्वन्द्व निर्भय फुकद रहा था। समीप पहुँचनेपर आश्रमके अन्तेवासी उसे प्रेमसे पुचकारते थे; किन्तु वह नटखट चार अंगुल दूरसे उनके बढ़े करोंको सूँघकर भाग जाता था। जो स्वाध्यायमें निमग्न होकर उसकी ओर ध्यान नहीं देते थे, उनकी पीठमें सिरसे धक्का मारकर या गुदगुदाकर मानो कहता—'बड़ा पढ़नेवाला बना है। मेरे साथ उछल ले तो जानूँ। वे हँस देते थे।

'अच्छा इसे नीवार दे दो।' कामदाने हुम्मां की और मन्द गतिसे चलकर प्रबुद्धके पीछे पहुँच गयी। वह उसकी मृदुल घुंघराली जटाओंको चाटने लगी थी। गुरु आज्ञा पाकर युवकने उसे पुचकारा। उटज प्रांगणसे नीवार लाया। कामदा द्वार तक पहुँच ही गयी थी। उसे नीवार भाग मिल गया। यद्यपि जाते हुए प्रबुद्धको उसने इस प्रकार देखा जैसे बुरा मान गयी हो 'अच्छा

तो आज तुम मुझे बिना सहलाये चले जाओगे ? साधु होते बड़े निर्मोही हैं।'

'ठीक यही बात' महर्षि एकटक अपने शिष्यकी प्रत्येक क्रियाको देख रहे थे। उन्होंने स्पष्ट लक्षित कर लिया था कि गौके पाससे हटनेमें उसे मानसिक क्लेश हुआ है। 'तुम्हारा साधन क्षेत्र यह विशाल संसार है।' अपने सम्मुख वेदिकासे नीचे बैठते ही उन्होंने अपने प्रकाशमय नेत्र शिष्यके मुखपर स्थिर कर दिये।

'क्या ?' वह चौंक पड़ा। सम्भवतः उसने समझा कि उसे तीर्थयात्राकी आज्ञा होगी। कहीं अवधूत होकर भटकना न पड़े। 'मैंने श्रीचरणोंमें आजन्म ब्रह्मचारी रहनेकी प्रतीज्ञा कर ली है।' वह डर गया था कि उसे गृहस्थ होकर संसारमें प्रवेश करनेकी आज्ञा तो नहीं मिलने वाली है।

'मैं जानता हूँ कि तुम्हारा वैराग्य पूर्ण है।' गुरुने गम्भीरतापूर्वक कहा, 'फिर भी तुम्हारा जीवन इन गहन काननों एवं गिरिगुहाओंके लिए नहीं है।'

'मेरा मन ऋभुकी भाँति एकाग्र होकर तत्त्व चिन्तन करनेमें असमर्थ है।' उसका कण्ठ आर्द हो गया था। 'प्रयत्न करके मैं तत्त्वोंके प्रसंख्यानमें एकाग्र नहीं हो पाता हूँ। सृष्टि एवं प्रलयक्रम क्षणभरमें समाप्त हो जाते हैं। कोई रस नहीं आता। मन अपनी करने लगता है।'

'ऋभुकी बुद्धि विशुद्ध है।' अपने नित्य ध्यानस्थ प्राय, अनमनेसे रहनेवाले शिष्यको महर्षि सर्वाधिक चाहते हैं। वे उसके स्मरणसे गद्गद् हो उठे—'वह

कठिन-से-कठिन विषय अविलम्ब हृदयंगम कर लेता है और उसपर एकाग्र हो जाता है।'

'मैं प्रबलकी भाँति आसन-प्राणायमका श्रम भी तो नहीं सह पाता हूँ।' उसे अपनी चिन्ता हो गयी थी। 'तनिक-सी देरमें श्रांत हो जाता हूँ। न, योग तो मेरे वश का नहीं !'

'प्रबल सचमुच पराक्रमी है।' महर्षिके रजत श्मश्रुल मुखपर मन्द हास्य आया। 'उसकी बुद्धि मन्द है और हृदयमें भी भावुकता नहीं ; पर उसका मार्ग ठीक है। शरीरके द्वारा उसने अब मनपर अधिकार पाना प्रारम्भ कर लिया है। निश्चय किसी दिन वह अपनी गुहामें निर्विकल्प समाधिमें मग्न मिलेगा।'

'न कानन और न गुहा' शिष्यने कुछ दृढ़तासे कहा 'मैं तो श्रीचरणोंकी सेवामें इन मृगशावकोंके साथ आनन्दसे जीवन काटूँगा। श्रीचरण मुझे भी अपनी कामदाका 'धम' ( बछड़ा ) समझ लें।'

'तुममें अवश्य ही आध्यत्मिक बुद्धि है।' बड़ी गम्भीरतासे महर्षिने कहना प्रारम्भ किया। 'किन्तु तुममें प्राणियोंके प्रति अपार सहानुभूति है। उत्कृष्ट वैराग्य है। अपने स्वार्थपर तुमने विजय प्राप्त कर ली है। अतः तुम अपनी सहानुभूतिको जागृत करो। इस सम्पूर्ण जीवलोक-को अपना सौहार्द प्रदान करो। यह प्रशस्त विश्व तुम्हारा आह्वान कर रहा है। पीड़ितों, दुर्बलों, सन्तप्तोंको आश्रय प्रदान करो। यह सब उसी विभुका स्वरूप है। इस प्रकार तुम **सुहृदं सर्वभूतानां**से अपनेको एक कर दो।

कर्म-निष्काम कर्म ! यह कर्मयोग ही तुम्हारे लिए मेरा आदेश है।'

आज जैसे उसे सचमुच प्रकाश प्राप्त हो गया था। उसका मस्तक स्वतः श्रीगुरुचरणोंपर झुक गया और वे चरण नेत्रोंके अमूल्य मुक्ताचरणसे चर्चित हो गये।

× × ×

'अरे कौशल्य।' गुरुदेव सायंकृत्यसे निवृत्त होकर अपने युवक शिष्यको पुकारा।

'उपस्थित हुआ प्रभु !' कहीं उटज प्रांगणसे एक ध्वनि-मृदु मधुर ध्वनि आयी और साथ ही दौड़ता हुआ एक चपल बालक आकर सम्मुख खड़ा हो गया।

'मैंने वेदिकापर कुशासन डालकर मृगचर्म बिछा दिया है।' बिना प्रतीक्षाके कि उसे क्यों पुकारा गया है वह कह रहा था—कमण्डलु जल पूर्ण करके रख दिया गया है। श्रीचरण पधारें। आज कामदाने अपने पात्रको ऊपर तक दुग्धपूर्ण कर दिया है—गुरुदेव, सम्पूर्ण ऊपर तक और मेरा मृग-शावक आज ही तृण लेने लगा......।' पता नहीं क्या कहना था उसे।

'अरे कुछ मेरी भी सुनेगा।' आचार्य-चरणने अपने भोले शिष्यके विवरणको सुननेमें रुचि नहीं प्रकट की।

'कुश या प्रोक्षणीय दूर्वा दूषित नहीं की है उसने।' हाथोंकी अंजलि बाँधकर कुछ भीत स्वरमें उसने कहा। गुरुदेवके गाम्भीर्यने उसे डरा दिया था। सायंकालीन हवनीय तो मैंने सावधानीसे ही प्रस्तुत किया था। उटज

प्रांगण प्रातःकाल गोमय प्रोक्षित कर दूँगा।' उसे लगा कहीं न कहीं त्रुटि रह गयी है और उसको उलाहना मिलेगा।

'सो कुछ नहीं।' प्रेमसे उसे आश्वस्त करते हुए गुरुदेवने समीप बैठ जानेका संकेत किया। 'मैं तुम्हारे आध्यात्मिक साधनके सम्बन्धमें तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ।'

'मैंने निर्दिष्ट तीनों आरण्यक कण्ठ कर लिये हैं।' उल्लासपूर्वक वह बोला।

समझ गया था कि आज उसे पाठ पूर्ण न करनेके लिए झिड़कियाँ नहीं सुननी होंगी— 'सुना दूँ प्रभु ?' शिशुका सहज सारल्य वाणीमें उतर आया था।

'अहोभाग्य ; किंतु उसे तुम अभी रहने दो।' अपने इस अल्हड़ शिष्यका भोलापन देखकर स्वभाव गम्भीर महर्षि भी मुस्करा उठे थे। 'मैं पाठ नहीं साधनके सम्बन्धमें तुम्हें कुछ बताना चाहता हूँ।' वाणी पुनः गम्भीर हो गयी थी।

अब निशा मुखमें अन्धकार घनीभूत होता जा रहा है। श्रीचरण इस समय कष्ट न करें ओह, उसके लिए महर्षि कितना श्रम करते हैं—'मैंने शीतलीकरणको तो सीख ही लिया है और सर्वांगासन भी कर लेता हूँ।' उसे इस विचारसे ही खेद हो रहा था कि इन उल्टी-सीधी क्रियाओंके लिए गुरुदेव अब अन्धेरेमें श्रम करेंगे। अन्ततः अवस्थानोत्थान (बैठक) एवं शयनोत्थान (दंड) से भी तो पर्याप्त व्यायाम हो जाता है। वह यह सब न भी करे

तो क्या हानि ? आश्रमके कार्योंमें पर्याप्त शारीरिक श्रम हो जाता है और शरीरके स्वस्थ रहनेके लिए उतना पर्याप्त है। पता नहीं क्या-क्या सोच रहा था वह।

'तू स्नातक भी होगा या नहीं गुरुदेव समझ नहीं पा रहे थे कि उसे किस प्रकार समझाया जावे।

तो क्या मुझे श्रीचरणोंसे पृथक्…?' जैसे विद्युत स्पर्श हो गया हो। दोनों हाथोंमें दोनों चरण लेकर मस्तक उनपर आ गया। अश्रु-वृष्टिके साथ हिचकी लेते हुए कुछ शब्द निकले और वह पाटल कोमल कुमार मूर्छित हो गया।

'सर्वेश !' महर्षिने आतुरतासे उसे क्रोड़में खींच लिया। मुखपर बिखरी जटाएँ पीछे कर दी कानोंके। कपोलोंपर ढुलके अश्रु हाथोंसे पोंछ डाले। नेत्र स्वतः नभकी ओर उठ गये। उनका जलधि गम्भीर मन क्षुब्ध हो उठा था।

'उस दिन अग्नि प्रज्वलित नहीं हो रहे थे। सम्भवतः समिधाएँ आर्द्र थीं। मेरे नेत्र तनिक ही धूम्रारुण हुए थे।' महर्षि सोच रहे थे — एक बीती बात। 'कौशल्य कहींसे आ गया। मेरा कष्ट इसे असह्य है। प्रोक्षणीय जल उसके करोंमें आ गया। यह अग्नि धूम्रवमन करने लगा है और यह मरुत, उसे आचार्य पादकी ओर ही प्रेषित करनेकी धृष्टता !' एक क्षणमें दोनों अमर भय विकम्पित मूर्त्त पड़े थे इसके चरणोंमें।' महर्षिके नेत्र टपकने लगे थे।

'मेरे प्रभु !' कुछ चेतना लौटी।

'वत्स !' प्रेम गद्गद वाणीमें महर्षिने पुकारा।

× × ×

'यह प्रबुद्ध श्रीचरणोंमें प्रणत है !' महर्षिने ब्रह्मद्रव पार कर लिया था। दिव्यतम प्रेम-भूमि गोलोककी सीमामें प्रवेश करते ही एक मणि मुकुट मण्डित मस्तक उनके चरणोंपर पड़ा। कोई आलोकमय पुरुष उनका अभिवादन कर रहा था।

'मैं मर्त्य हूँ भद्र !' संकोचसे महर्षि एक पद पीछे हट गये।

'मेरे लिए तो श्रीश्यामसुन्दरसे अभिन्न !' घुटनोंके बल अञ्जलि बाँधे बैठ गया वह। स्मितकी आनन्दमय छटा सम्भवतः इसी लोकमें अपना अनवरुद्ध विकास कर पायी है।

'वत्स !' प्रेमाकुल महर्षिने अङ्कमाल दी। 'तुम्हारा कर्मयोग साफल्यकी सीमा पार कर गया। विश्वरूप विश्वात्माकी तुमने निष्काम सेवा की और यह सालोक्य तुम्हारा 'दास' हो गया।'

'उस दयामयकी दयाके पुरस्कारकी कोई परिधि नहीं।' भरे कण्ठसे दिव्य पुरुष कह रहा था—'साथ ही आचार्य-चरणोंकी अपार अनुकम्पा इस जनको सहज प्राप्त थी !'

'मैं प्रभुके दर्शन करूँगा, वत्स !' महर्षिने अभिप्राय प्रकट किया।

'आचार्य पादके लिए कहीं भी कोई अवरोध नहीं।'

उसे ज्ञात था कि अनधिकारी यहाँतक पहुँच नहीं सकते। इस मायातीत दिव्यधाममें श्रीहरिके निजजन ही प्रवेश पाते हैं। पथ-प्रदर्शक बन गया वह।

'प्रभु अपने प्रबलको विस्मृत न हुए होंगे!' कलित इन्दीवरांग, पीतवास, मयूर मुकुट एक मणिमय आभूषणोंसे झलमलाता किशोर अपनी मन्द मुस्कानके उज्ज्वल सुमनोंसे चर्चित महर्षिके चरणोंमें प्रणत हो गया।

'भक्ति लभस्व!' दोनों भुजाओंसे उठाकर हृदयसे लगाते हुए महर्षिने आशीर्वाद दिया। यहाँ कुशल या अकुशल, शुभ या अशुभकी कल्पना ही प्रवेश नहीं पाती। इस प्रेमलोकमें प्रेमका एकछत्र साम्राज्य है।

'अपने परिपूर्ण मनोयोगसे सर्वात्माके जिस सर्वांग-सुन्दर स्वरूपको लेकर निर्विकल्प समाधिमें तुम एकाकार हो गये।' जैसे महर्षि अपने आपसे कह रहे हों 'वह तुम्हें उपलब्ध हुआ। तुमने उसका सारूप्य प्राप्त किया।' महर्षिका मस्तक तनिक झुक गया।

'आचार्य चरणोंका अनुग्रह!' उस किशोराङ्गकी मेघगम्भीर वाणी आर्द्रतर थी।

'तुम भी ब्रजेन्द्रके सर्वदा समीप रहनेवाले पार्षद हो' महर्षिने सरलतासे पूछा 'मैं इस समय दर्शन कर सकूँगा?'

'आचार्य चरणोंकी गति अनवरुद्ध है।' उन पार्षद प्रवरकी वाणीमें कोई खेद नहीं था। 'वैसे सर्वदा समीप रहनेका सौभाग्य प्रभुसे अभिन्नजन ही प्राप्त करते हैं।

इच्छा करनेपर दर्शन करनेमें कोई बाधा न भैया प्रवृद्धको है और न मुझे ही।' सच्ची बात तो यह है कि वहाँ अवरोधका अस्तित्व ही नहीं है।

'ऋभु होगा तब नित्य समीपस्थोंमें' महर्षि अपने ब्रह्मज्ञ एवं ब्रह्मलीन शिष्यके सम्बन्धमें उत्सुक हो गये थे। वहीं उनका सर्वश्रेष्ठ शिष्य था।

'वे उन ज्ञानधनसे एक हो गये।' पवित्रकी वाणीमें आदर था। अवश्य ही उनका संक्षिप्त उत्तर सूचित करता था कि उन्हें इस एकीभावमें कोई आकर्षण नहीं।

'ठीक ही है।' महर्षिने एक क्षण सोचकर कहा। ऋभु निर्विकल्प, निरुपाधिक ब्रह्मकी निदिध्यासन कर रहा था। उसका पार्थक्य संभव नहीं था। 'तत्त्वमसि'के निगूढ़ तात्पर्यसे अवगत होकर उसे तादात्म्य प्राप्त करना ही था। उसने सायुज्य प्राप्त किया।'

'भाग्यशाली तो चिरंजीवी कौशल्य हैं!' गुरुदेवके पीछे अपने लघु भ्राताको देखकर पार्षदने हँसते हुए कहा—'वे श्रीपादके सम्पूर्ण अनुग्रहके अधिकारी हो गये हैं और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वे सशरीर यहाँ तक पहुँच गये हैं।' कौशल्यने अभिवादन प्रथम ही कर लिया था। इस अपरिचित स्थानमें वह संकुचित हो गया था। इन अद्भुत अलौकिक रूपोंने उसे आश्चर्यमें डाल दिया था।

'वह अभी बच्चा है।' स्नेहपूर्वक पीछे कौशल्यपर

दृष्टिपात करते हुए महर्षिने कहा—'साधन एवं मन दोनों दृष्टिसे अबोध शिशु !'

× × ×

'ओह कौशल्य !' जैसे सम्पूर्ण संगीत आह्लादकी क्रीड़ामें उल्लसित हो उठा हो। महर्षिको अभिवादन करनेसे पूर्व उस नटखटकी दृष्टि अपने गुरुदेवके पीछे आते ऋषिकुमारपर पड़ी—'अच्छे आये ! हम सब आज तुम्हारी प्रतीक्षा ही कर रहे थे।' सम्भवतः सहचरोंको चुन लेनेमें उसे आधे पलका विलम्ब भी सह्य नहीं।

कितने बालक थे—कौन गिने। सरल, चपल, सौंदर्यकी मूर्ति। किसीने बालोंमें पुष्प गूंथ रखे थे और किसीने पंख। किसीके कन्धेपर पटुका ठिकानेसे था, किसीका अव्यवस्थित। कोई धूलि सना था, किसीने गेरुआ खड़िया पोत ली थी। हास्य, क्रीड़ा, आनन्द। उन्हें जैसे और कुछ पता नहीं। सबके सब एक साथ खड़े हो गये। यदि एक दढ़ियल ऋषि सम्मुख न दिखायी पड़ते तो वे निश्चय दौड़ जाते।

'वन्दन करता हूँ प्रभु !' उनके मध्यके साँवले पीताम्बरधारीने अपना मयूर मुकुट झुकाया और साथ ही मस्तक झुकाया नीलाम्बरधारी स्वर्णगौरने। देखादेखी सबने हाथ जोड़कर मस्तक झुका दिया। जैसे वायुकी हिलोर पुष्पित कमलवनमें आ गयी हो—'वन्दन करता हूँ प्रभु !' सहस्र-सहस्र बालकण्ठ गुञ्जित हो उठा।

महर्षि खड़े थे—शान्त, स्तब्ध, नीरव। वे अपने

आपमें नहीं थे। उस सौंदर्य-माधुर्यके अपार पारावारमें निमग्न हो गये थे।

"भैया कौशल्य अब यहीं रहेगा! मेरे समीप!' श्रीव्रजसुन्दरके कलकंठने उन्हें चौंका दिया। नेत्र खुले। कौशल्यको नटखट बालक अपने नायकका संकेत पाते ही पकड़ ले गये थे। कोई उसकी जटाओंमें ढेरों पुष्प उलझा देना चाहता था और कोई उसके वल्कलको फेंककर पीताम्बर पहनानेमें लगा था। अब उसका छुटकारा नहीं। ये ऊधमी बालक उसे छोड़नेसे रहे।

'मैं उसके लिए साधन पूछने आया था।' महर्षिका गद्गद कण्ठ स्पष्ट नहीं था 'और वह सामीप्य···मेरे सभी शिष्योंसे अधिक भाग्यशाली···।'

'उसने आपके चरणोंमें भक्ति प्राप्त कर ली है।' श्यामसुन्दरने हँसते-हँसते समझाया। 'वह (भक्ति) तो कर्म, ज्ञान और योगसे भी महत्तम है।'

---

## वे दम्पति

'मैं तुम्हारे स्पर्शको पहचानता हूँ।' पुरुषने सहज स्वरसे कहा। 'मुझे तुमसे कोई भय नहीं और न मैं उस प्रकार चौंककर भागूँगा, जैसे तुम भागती हो।' उसने धीरेसे दोनों हाथ पकड़ लिए और नेत्रोंसे उन्हें हटाते हुए पीछे देखा।

'सचमुच तुम बड़े निर्भीक हो।' नारीके स्वरमें किञ्चित् आश्चर्य था। 'यदि कोई शरट् या गुरिल्ला होता हो?'

'शरट् आँखें नहीं ढक सकता और न इस पहाड़ी तक चढ़ ही सकता है।' पुरुषने हाथ छोड़ दिया था। 'गुरिल्लेके हाथ तो होते हैं, किन्तु वह आँखें ढककर शान्त खड़ा न रहता। मैंने तुम्हें गुफामें सोते देख लिया था।'

'यदि मैं उठकर तुम्हारे सिरपर पत्थर दे मारती?' नारीको स्वतः आश्चर्य था कि उसने ऐसा क्यों नहीं किया। उसकी आखेट-भावना कहाँ चली गयी थी। 'मेरे पास खूब बड़ा पाषाण-भल्ल है।'

'मुझे पता है।' पुरुषने सहज स्वरमें कहा 'मैंने उसे देख लिया था, द्वारपर से। मेरे भल्लसे आधा ही तो है। मैं एकाकी ऊब गया हूँ। तुमसे मित्रता करना चाहता हूँ। तुम आक्रमण कर सकती हो, यह बात मेरे ध्यानमें थी, किन्तु मैंने सोचा, तुम अधिक चोट नहीं पहुँचा सकोगी। सुकुमार हो तुम।'

'तुम बड़े दुष्ट हो।' नारी इस नवीन स्तुतिसे प्रसन्न हो गयी थी। उसे विचित्र लगी यह स्तुति। किंचित् हास्यपूर्वक उसने कहा। 'मेरी गुफा तक सोते समय आ गये। भीतर झाँकते रहे। गुफाकी ओर पीठ करके बैठ गये। कुशल थी कि भूख नहीं लगी थी, नहीं तो मारकर खा भी जाते।' भयसे सचमुच वह सिहर उठी और दो पग पीछे हट गयी।

'मुझे मांससे घृणा है! पुरुषने थूक दिया। फल और जड़ें मुझे अच्छी लगती हैं और खूब मिल भी जाती हैं। आखेट तो मैं केवल शरट्, गुरिल्ले और शेर जैसे उन पशुओंका करता हूँ, जिनसे मुझे आक्रमणका भय है।' अपनी भुजा उठाई उसने। सुपुष्ट मांस-पेशियोंपर नारी-की दृष्टि आकर्षित हुए बिना न रही।

'मैं अवश्य चीख पड़ती,' नारीने मृदु स्वर बनाया 'यदि तुम्हें अपनी गुफामें देख लेती।' समीप आकर बैठ गयी वह।

'भयकी बात तो थी,' पुरुषके स्वरमें आदेशका भाव था। 'तुम गुफा-द्वार खुला छोड़कर सो गयीं थीं। कोई भी शेर या गुरिल्ला भीतर घुस सकता था। ऐसा नहीं करना चाहिए।'

'सचमुच भूल हो गयी। नारी जैसे सफाई दे रही हो। बहुत थक गयी थी। एक हिरनके पीछे बहुत भागी थी प्रातःसे। आकर लेटी और सो गयी। ऐसा कभी पहिले नहीं हुआ।'

'मैं तुम्हारी गुफा देख लूँ, पुरुष उठ खड़ा हुआ।

उत्तरकी उसे कोई उपेक्षा न थी। नारी उसका अनुगमन कर रही थी।

'तुम मृगचर्मपर सोती हो ?' एक विस्तीर्ण शिला-पर वह फैला था। यह है तुम्हारा भल्ल ? बहुत छोटा है और हल्का भी है।' पुरुषने उसे उठाया, उछाला ऊपर-को और फिर पकड़कर यथा-स्थान रख दिया।

'अब मैं सोऊँगा !' गुफाको उसने अधिक बारीकी-से नहीं देखा। मृगचर्मपर लम्बा लेट रहा। जैसे यह उसीकी गुफा हो। 'तुम यदि कहीं जाने लगो तो गुफा-द्वार शिलावरुद्ध कर देना।' अत्यन्त परिचितकी भाँति उसने आदेश दे दिया।

'तुमने न तो कन्द देखे न फल !' पुरुषके गुफामें प्रवेश करते समय तो नारी डर रही थी कि वह उसका संचय खा जायगा। किन्तु उसकी निरपेक्षताने उसके मनमें दूसरी भावना जागृत कर दी। सम्भवतः यह अतिथि-सत्कारका प्रथम प्रयास था मानवके लिये शाकद्वीपमें। मैंने पूरा मधुछत्र ला रखा है और नारिकेल-पात्रमें झरनेका शीतल जल भी है।

'मैं तुम्हें लूटने नहीं आया था !' पुरुष उठ बैठा। 'किन्तु अब तो कुछ खिला दो !' उसने उठकर कोई वस्तु ढूँढने या पानेका प्रयत्न नहीं किया।

'जो अच्छा लगे खा लो !' नारी अचानक ही गृहिणी हो गयी थी। उसने सब कन्द और फल पुरुषके सामने रख दिये। एक नारिकेल टुकड़ेमें मधुछत्र निचोड़ दिया और जलपात्र भी ला रखा 'मेरे लिये थोड़ा मधु छोड़

देना !'

'मैं अकेला कहाँ भोजन करने जा रहा हूँ।' नारीका हाथ पकड़कर पुरुषने उसे भी समीप बैठा लिया। 'तुम भी खाओ ! फल और कन्द बहुत हैं और मधु भी दोनोंके लिए पर्याप्त है।' पहिली बार पुरुषने स्थिर बैठकर भरपेट भोजन किया।

भोजन करके लेट गया वह उसी मृगचर्मपर। लेटते ही खर्राटे लेने लगा। नारी देखती रही—देखती रही उसे और फिर अपना पाषाण भल्ल उठाकर द्वारपर जा बैठी।

'तुम्हारी गुफा छोटी है।' भली प्रकार निद्रा लेकर पुरुष उठा था। गुफासे निकलकर नारीके समीप बैठते हुए उसने कहा ; 'अब हम दोनों साथ-साथ एक ही गुफामें रहें, यही अच्छा होगा। मेरी गुफा पर्याप्त बड़ी है और इससे कहीं अधिक सुरक्षित भी।'

उसी दिन सायंकाल नारी अपना भल्ल और नारिकेल-पात्र एवं मृगचर्म लेकर पुरुषकी गुफामें आ गयी। सम्भवतः उसी दिनसे नारीने स्वगृह त्यागकर पतिगृहमें निवास अपनाया है।

× × ×

अभीभी पृथ्वीपर महाकाय शरटोंका अभाव नहीं हुआ था। दलदलीय भूमिमें वे चालीससे साठ हाथ लम्बे प्राणी जिनका आकार मगर एवं गिरगिटसे मिलता-जुलता था, भरे पड़े थे। प्रायः ये शरट् झीलके पन्द्रह बीस हाथ जल हीमें रहते थे। जहाँ सघन, लम्बी घासें उगी होतीं।

सूखी पृथ्वीपर सबसे बड़ा प्राणी था, मेगनेथियम। यह भी शरट् जातीय ही था। फल एवं पत्ते इसके आहार थे। ऊँचे बड़े पेड़ोंकी तीन चार फुट मोटी डालियोंको वह मूलीके समान तोड़ डालता था। शेर मेंढ़कोंको इस प्रकार चीर फेंकता, जैसे हम प्रातःकाल दन्तधावनको। उसके अतिरिक्त शेर, व्याघ्र, ऊनी भैंसे, त्रिशृंगी गैंडा, ये सब महाभयंकर प्राणी थे उस घोर वनमें।

वृक्षों पर गुरिल्ले भरे पड़े थे और वे सब मांसाहारी जातिके थे। ये दल-दल से दूर रहते थे। तीन चार हाथ लम्बे पतिंगे भी अपने पैर धँसाकर पशुओंका रक्त पी जानेको बहुत थे। उनकी स्फूर्ति एवं गति ठीक आजके जुलाहे पतिंगे सी थी। सूखी भूमि एवं खोहोंमें अजगर तथा दूसरी जातिके सर्पोंकी कमी नहीं थी।

सबसे भयंकर था भीषण शरट्। वह पृथ्वीपर, दल-दलपर और जलमें समान गति रखता था। यह मांसाहारी अपनेसे दूने तिगने मेगनेथियम या दोनों शरट्का सरलतासे शिकार कर लेता था। उसके पंजे व्याघ्रसे सुदृढ़ थे। दूसरे पशु इसके लिए चींटी जैसे तुच्छ थे।

दिनभर भयंकर गर्मी पड़ा करती थी। धरती ढकी थी ऊँचे वृक्षों, लताओं एवं घासोंसे। दल-दल अधिक था। वायुमें नमी भरी ही रहती थी। संध्या अल्पकालीन होती थी। रात्रिके सूचीभेद्य अन्धकारको ज्येष्ठकी छाया या धूपकी भाँति एकसे दूसरीतक पंक्तिको डुबाते आते देखा जा सकता था।

मानव जलप्लावनके पश्चात् शाकद्वीपमें नामको ही

था। हमें पता नहीं कि उस समय दूसरा मानव भी वहाँ था या नहीं। हम केवल एक वन्यमानवको जानते हैं। एक उजाड़ टीलेपर जिसके चारों ओर खुली भूमि थी, कुछ दूर वह गुफामें रहता था। टीलेमें एक ही गुफा थी और गुफा-मुखपर खूब सघन ऊँचा एक पेड़ था। सुरक्षा-की दृष्टिसे मानवने यह स्थान चुना था।

वह रक्षाके लिए एक खूब भारी पाषाण-भल्ल रखता था। उसकी गुफामें शेर एवं मरी भैंसके कई कच्चे चमड़े पड़े थे। जंगलमें फल-कंद एकत्र करते समय इन आक्रमण-कारी पशुओंका उसने आखेट किया था। सुपुष्ट मांस-पेशियाँ, वृक्षोंपर चढ़ने एवं सरकनेको पट्ठ, घुँघराले काले बाल, कुछ अधिक बड़े रोम, मूँछें एवं श्मश्रु, उसका साढ़े चार हाथ ऊचा साँवला शरीर बड़ा भव्य था।

उस दिन वह कन्द लेने गया था। सहसा चौंक पड़ा। हाथमें छोटासा भल्ल लिए, कुछ छोटा, कुछ दुर्बल, यह कौन प्राणी है? लताओंकी ओटमें हो रहा वह। निकटसे देखनेका अवकाश मिला। 'उसके केश अधिक लम्बे हैं। शरीरपर रोम भी नहीं, न मूँछ ही हैं और न दाढ़ी। वक्षपर दो ऊँचे मांस-पिंड।' उसने लक्षित कर लिया उसका अपनेसे शारीरिक भिन्नत्व। 'उसका शरीर चिकना और बूढ़ा है। मांस-पेशी जैसे हैं ही नहीं।' पता नहीं कि क्यों उस दूसरे मानवके प्रति वह आकर्षित हो गया। यह आकर्षण सजातीयताके कारण ही था सम्भवतः। जलप्लावनमें वह शिशु ही था, जभी उसे माता-पिताने

अलग कर दिया। उसे पुरातन दृष्टिके अत्यन्त संस्कार प्राप्त थे। वह पुरुष-स्त्रीके भेदसे अब तक परिचित ही नहीं था। लताओंकी ओटसे तनिक दूर हटकर वह उसके दृष्टि-पथमें आया। निकट प्रकट होनेसे यदि आक्रमण कर दे तो? वह भीत नहीं था, किन्तु इस सजातीय प्राणीका वध उसे अभीष्ट नहीं था। यह भी सम्भव था कि वही डरकर भाग जावे। ऐसा होनेपर परिचयका पथ ही अवरुद्ध हो जायगा।

उसने भी इसे देखा। चौंकनेके पूरे लक्षण प्रकट हुए। देखता रहा एकटक वह प्राणी इसे देरतक। सम्भवतः सादृश्य एवं वैभिन्यकी तुलना कर रहा था। अचानक किलकारी मारी उसने। 'ओह, नारी है।' पुरुषने मन ही मनमें कहा। 'चपल है इसलिए और उसका कंठ-स्वर कितना कोमल भी है।' उत्तरमें उसने किलकारी नहीं दी। जानता था कि इसकी गम्भीर ध्वनिसे वह डर जायगी। केवल हँस पड़ा। हाथके संकेतसे उसे समीप बुलाया और उसकी ओर बढ़ा।

सहसा वह भाग खड़ी हुई। लम्बी छलाँगें लीं हिरन-की भाँति और एक दूसरे झुरमुटमें होती अदृश्य हो गयी। पुरुषने पीछा किया व्यर्थ। उस सघन वनमें कोई किसी-का पीछा नहीं कर सकता। उसे खेद हुआ। पता नहीं क्यों, मन अवसादसे भर गया। फल और कंद एकत्र न कर सका। गुफामें लौट आया और अपनी शिलापर चुपचाप पड़ रहा।

अब पुरुष नित्य उसी ओर जाने लगा, जिधर नारी

दृष्टि पड़ी थी। 'क्या वह दूसरी ओरके काननसे परिचित है ? अथवा वह भी पुरुषको देखना चाहती है ? कौन जाने ? वह सदा दूर ही रहती है। हँसती है, किलकती है, किन्तु बुलानेपर या अपनी ओर मनुष्यको आते देखते ही भाग खड़ी होती है ?

एक दिन मनुष्य लता-कुञ्जमें छिपा बैठा रहा। समयसे बहुत पहले गया था वह। वह आयी, इधर-उधर देखती रही देर तक। 'क्या वह मनुष्यको ढूँढ़ रही थी ?' खिन्नताके चिह्न मुखपर आये। उदास होकर लौट पड़ी। पुरुषने चुपचाप पीछा किया। वह सीधे अपनी गुफापर गयी। पुरुषने निवास-स्थान दूरसे देखा और लौट आया।

× × ×

'मेरा मन अब यहाँ नहीं लगता।' एक दिन पुरुषने नारीसे कहा। वह गुफामें पुरुषके समीप ही बैठी थी। 'यहाँ मैं दो बार अस्वस्थ हो चुका।'

'तब चलो।' नारीने निश्चिन्त उत्तर दिया 'हम दोनों मेरी पहली गुफामें रहें या जहाँ आपकी इच्छा हो।'

'मेरी बीमारी, ओह !' पुरुषका स्वर खिन्न था। पता नहीं कहाँ-कहाँ से तुम अधजले शशक ले आती थीं।'

'तुम तो यों ही रूठ जाते हो।' पुरुषके कन्धेपर अपनी दक्षिण भुजा रखते हुए नारीने अनुभव किया 'यह खून स्वादिष्ट था, यह तो तुम्हीं कहा करते हो। फिर

दावाग्नि तपने दो, मैं ढेरों ला रखूँगी।'

बीमारीमें नारी पुरुषको छोड़कर फल एकत्र करने भी नहीं जा सकी थी। सौभाग्यसे समीपके वनमें दावाग्नि लग गयी। पुरुषको प्रथम बार अग्निपक्व मांस मिला। वह उसका स्वाद भूल नहीं पाता था। कच्चे मांसको भी उसने मुखमें डाला, किन्तु खा नहीं सका।

'मैं दावाग्निको ढूँढ़ूँगा।' पुरुष निश्चय कर चुका।

'दावाग्निको!' नारी चौंकी 'ना, ना! कहीं उसीमें फस गये तो?' वह भय-विह्वल हो गयी थी।

'मैं दूर रहकर ही उसे ढूँढ़ूँगा।' पुरुषने समझाया और 'सुरक्षित रखूँगा।'

'हम शशक मारेंगे' एक क्षणमें ही नारी खिल उठी, 'उसे उसीमें भूनेंगे!' 'दावग्नि काष्ठ ही तो खाता है, हम उसे थोड़ा-थोड़ा काष्ठ खिलाते रहेंगे। वह बड़ा और मोटा होकर हमें नहीं खा सकेगा और हम उसे मरने भी नहीं देंगे। हम उसे अपनी गुफासे दूर ही पालेंगे, दूसरी गुफामें।' उसने पूरा आविष्कार कर दिया अग्नि-रक्षण प्रणालीका। लेकिन उसे भय था कि गुफामें पालने-से रात्रिको सोते समय वह हमें खा न जाये।

'तुम्हारे लिए ढेरों कन्द और फल दो चार दिनमें यहाँ एकत्र कर दूँगा और कई मधुछत्र भी।' पुरुषने नारीके उल्लासमें कोई योग नहीं दिया। पता नहीं क्यों वह आज उदासीन हो रहा था। 'मैं एकाकी जाऊँगा।'

'एकाकी?' नारी चौंकी। 'मुझे साथ नहीं चलने दोगे? मैं तुमसे कुछ माँगूँगी नहीं। तुम्हारे लिए भी

फल और कन्द ला दिया करूँगी। तुम्हारे दावाग्निको पालूँगी।' उसका कण्ठ भर आया था। पुरुषके कण्ठमें उसने दोनों भुजाएँ डाल दीं।

'ऐसा कुछ नहीं !' रूक्षतापूर्वक नारीके हाथोंको कण्ठसे अलग करता हुआ पुरुष कह रहा था 'मैं एकाकी ही जाऊँगा।'

'तब मुझे मार डालो !' वह सहसा खड़ी हो गयी। पुरुषका भल्ल कोनेमें-से उठा लायी। उसे पुरुषके सम्मुख बढ़ाकर उसके सम्मुख खड़ी हो गयी। नेत्रोंसे दो धाराएँ चल रही थीं और हिचकी बँध गयी थी। पुरुषने भल्ल लिया ही नहीं। धड़ामसे गिर पड़ा और वह वहीं बैठकर घुटनोंमें मुख छिपाकर सिसकने लगी।

'ओह, तब तुम मुझसे प्रेम करती हो' पुरुष मुस्करा उठा। दोनों भुजाएँ पकड़कर नारीको उसने अपने पास बैठा लिया। तो तुमने मुझे खूब जान लिया है ?' हँस रहा था वह।

'जान लिया है तुमने खूब अच्छी प्रकार शरद्‌को, शेरको, इस टीलेको' नारीने अब समझ लिया था कि पुरुष उसे चिढ़ानेके लिए ढोंग कर रहा था। अतएव उसके स्वरमें रोष था 'तुम उन सबसे प्रेम क्यों नहीं करते ?' मेरे लिए तो यह जानना भर पर्याप्त था कि तुम विश्वसनीय हो, मेरे दुःख-सुखके साथी हो, बस ! प्रेम कहो या भक्ति, उसके लिए विश्वास मात्र पर्याप्त है और उस विश्वास भरको ज्ञान भी।

---

# महान् कौन ?

तीनों अधीश्वरोंमें महान कौन है ? यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ था ऋषियोंके समाजमें। सतयुगका निसर्ग-पावन काल और सब-के-सब वीतराग, तपोधन, ज्ञानमूर्ति ; किन्तु कोई भी प्रश्न कहीं उठनेके लिए क्या पूर्व भूमिका आवश्यक हुई है ?

जीवनको—सृष्टिको उत्पन्न करने वाले भगवान् ब्रह्मा। सृष्टिकी - जीवनकी सुरक्षाके संस्थापक भगवान् नारायण। अपनी तृतीय नेत्रकी वह्नि-शिखामें त्रिलोकीको क्षणार्धमें भस्म कर देनेवाले प्रलयङ्कर शिव। सृष्टिके ये तीन अधीश्वर— इनमें महान् कौन ?

तर्कसे सत्यका निर्णय करनेमें अल्पज्ञ प्रवृत्त होते हैं। सुस्पष्ट प्रतिमा जानती है—यह भ्रान्तिका पथ है। महर्षियोंने महर्षि भृगुपर छोड़ा इस निर्णयका दायित्व।

महर्षि भृगु - प्रजापति ब्रह्माके साक्षात् पुत्र। सबसे प्रथम अपने पितृ-सदन पहुँचे। स्रष्टाने देख लिया, उनके प्रिय पुत्र आ रहे हैं। किन्तु यह क्या ? भृगुने न अभिवादन किया और न सम्मानका कोई भाव दिखलाया।

'इतना अहंकार हो गया इसे अपने तपका' क्षुब्ध हो उठे ब्रह्माजी। रोषसे अरुण हुए नेत्र ; किन्तु कोई पिता बनकर पिताके ममत्वको देखे तो। अपने पुत्रको शाप तो नहीं दिया जा सकता। भृगुका उद्देश्य पूरा हो गया था। वे चुपचाप खिसक गये।

तुम उत्पथगामी हो। मैं तुम्हारा स्पर्श नहीं कर

सकता !' ब्रह्मलोकसे भृगु सीधे कैलाश पहुँचे थे। भगवान् नीललोहितने देखा कि उनके अनुज आये हैं तो दोनों भुजायें फैलाकर अंकमाल देने बढ़े लेकिन भृगुने झिड़क दिया उन्हें ।

त्रिलोचनके नेत्र जल उठे। करोंमें त्रिशूल आ गया। लेकिन देवी पार्वतीने चरण पकड़ लिये और तबतक भृगुजी वहाँसे क्षीरसागरका पथ पकड़ चुके थे।

'भगवन् ! सुकोमल हैं आपके श्रीचरण और कर्कश है इस जनका वक्ष। पीड़ित तो नहीं हुए ये पूज्य पादतल ?' भृगुने पहुँचते ही शेषशायी प्रभुके वक्षस्थलपर पाद-प्रहार किया था और वे रमाकान्त झटपट उठकर महर्षिके चरण पकड़ क्षमा माँगते हुए कह रहे थे—'आज मैं पवित्र हुआ। अबसे आपके चरणोंका चिह्न मेरे वक्षस्थल-को नित्य भूषित करेगा।'

महर्षि भृगु लौट आये ऋषिगणोंके समाजमें। उन्होंने अपना अनुभव सुना दिया और अब निर्णयके लिये शेष क्या रह गया था। श्रेष्ठत्व केवल शक्तिमें नहीं, संहारमें नहीं, जीवनकी सृष्टिमें भी नहीं—जीवनकी सुव्यवस्थामें और उस धृतिमें है जो जीवनके औद्धत्यमें भी अविचलित रह सके।

यह पौराणिक कथा बार-बार सम्मुख आती है अपने नित्यपाठके क्रममें; किन्तु उस दिन एक अन्य रूपमें सम्मुख आ गयी। वही रूप तो आपके सम्मुख लानेके लिए इसे मैंने प्रथम प्रस्तुत किया।

× × ×

'उस पार गंगातट पर वह जोगीकी कुटी है। उसके ऊपर वह पहाड़पर जो गाँव है, उसमें मेरा घर सामने दीखता है।' पन्द्रह वर्षका होकर भी यह हमारा श्याम अभी कठिनाईसे दस वर्षका लगता है। वैसा ही भोला और कोमल। इस दुबले, सुन्दर गोरे पर्वतीय बालकका नाम तो बुद्धिसिंह है। यह नौकर है किन्तु न इस प्रकारका व्यवहार हम कर पाते हैं और न इसीमें ऐसा कोई हीनताका भाव है। घरके बच्चेके समान हिला-मिला, प्रसन्न और निर्भीक।

'वह बड़ा जोगी है। उत्तर काशी नहीं आता। आप उसके पास चलोगे? मैं अपने घर ले चलूँगा आपको।' उत्तर काशीमें ठहर गये थे हम ग्रीष्म व्यतीत करने और सायंकाल टहलने उजेलीसे आगे निकल गये थे। श्यामका उत्साह इसमें था कि हम घर चलें।

'चलेंगे तुम्हारे घर और तुम्हारे उस जोगीके दर्शन भी करेंगे।' मैंने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। प्रसन्न हो गया वह बालक और सचमुच एक दिन ज्ञानसूके पुलसे गंगा पार करके लगभग दो मील किनारे-किनारे उस बालकके साथ चलकर मैंने उसके जोगीके दर्शन किये।

वे अच्छे साधु हैं। पर्वतीय जन प्रायः साधुमात्रको जोगी कहते हैं; किन्तु सामान्य साधुसे भिन्न वे सचमुच साधनानिष्ठ साधु हैं।

गंगाके तटपर उनकी छोटीसी कुटिया है। शीतकालमें जब यहाँ बरफ पड़ती है यह श्यामला भूमि और पर्वतों पर लहराते चीड़के वृक्ष भी श्वेत हिमवस्त्र ओढ़ लेते हैं।

वे दिगम्बर ही रहते हैं और मौन तो रहते ही हैं।

उत्तरकाशीका शीतल गंगाजल— हिमशीतल इस जलमें ज्येष्ठकी दोपहरीमें भी डुबकी लगानेपर हमारे अंग अकड़ जाते हैं। स्नान तो मैंने गंगामें यहाँ किया है; किन्तु वह लोटेसे जल शरीरपर डालकर झटपट तौलिया उठा लेनेवाला स्नान और ये महापुरुष प्रतिदिन तीन घण्टे प्रातः, दो घण्टे मध्याह्न और एक घण्टे सायंकाल कटिसे ऊपर गंगाजलमें खड़े रहकर अपना जप किया करते हैं।

जहाँ त्याग है, तप है वहाँ लोक-श्रद्धाको आमन्त्रित नहीं करना पड़ता। अतः उन तपस्वीको भिक्षाके लिए कहीं जानेकी भला क्या आवश्यकता हो सकती है ?

शीतने शरीरके चमड़ेको कठोर बना दिया है। कृष्ण वर्ण, अरुणाभ नेत्र, बढ़ी जटायें, प्रशान्त गम्भीर मुख, तपस्याका तेज है भालपर। वे मौन हैं, उनके दर्शन ही किये जा सकते हैं। सुना—जब वे जलमें खड़े होते हैं, किसीका समीप आना उन्हें रुचिकर नहीं होता। हमारा श्याम कह रहा था, किसीको उन्होंने पकड़कर बलात् जलमें एक बार खड़ा कर दिया था, क्योंकि वह बार-बार उनके साधनकालमें वहाँ चला जाता था।

साधुका दर्शन करके हम लौटे। श्यामका आतिथ्य स्वीकार करना था। एक सरल पर्वतीय घरका सरल-सहज आतिथ्य। लौटना था दोपहर व्यतीत करके और जब पेटकी चिन्ता न हो, लौटनेकी शीघ्रताका कारण ही क्या हो सकता था ?

श्यामो, वह पगला कहाँ है ? मैं उससे अवश्य मिलना

चाहता था। उसके सम्बन्धमें अनेक बार श्याम चर्चा करता है। वही है जो रातको, वर्षामें बढ़ी नदीको, वन्य पशुओंके भयको भी भूलकर किसीके लिए चाहे जब उत्तर काशी भेजा जा सकता है। उसे आप कोई काम बता दें, अस्वीकार नहीं करेगा। उसी समय उसे करने चल देगा। लेकिन आपका काम हो ही जायगा, पगला उसी दिन या दो दिन बाद भी लौट ही आवेगा, यह आश्वासन नहीं। वह पगला जो ठहरा।

'पता लगाता हूँ बाबू जी!' श्यामके सौम्य, सरल पिताने अपनी कन्याको पर्वतीय भाषामें कुछ कहा और वह बच्ची घरसे बाहर चली गयी।

'एक बाबूने एक बार पगलेको डाँटा—'गधा कहींका।' श्याम अपने भोलेपनके अनुसार हमें सुनाने लगा—'तो पगला बोला—'बाबूजी! आप ढूँढ़ लीजिए—गधे हमारे पहाड़ोंमें पैदा ही नहीं होते। वे यहाँ नीचे मैदानोंसे ही लाये जाते हैं।'

श्यामके पिताने उसे रोकना चाहा, किन्तु हमने उन्हें मना कर दिया। श्याम कह रहा था—'बाबूजी खूब गुस्सा हुए और बोले—'सुअरके बच्चे!' पगला फिर कहने लगा 'बाबूजी, सुअर भी पहाड़ोंमें नहीं होते। वे भी नीचे मैदानोंमें होते हैं और वहीं बच्चे देते हैं।'

हम सभी हँस पड़े। उस पागलपर कोई क्रोध करके क्या करेगा? वह एक कामसे जायगा तो मार्गमें पता नहीं कितने काम निकलेंगे उसके। कहीं काँटे और कहीं पत्थर इस पहाड़ी मार्गमें पद-पदपर। पत्थर तो ऊपरसे वर्षाके

वेगमें, गायों तथा मनुष्योंके पैरोंसे लुढ़ककर आते ही रहते हैं। पगला उन सबको हटाता चलेगा और इस प्रकार चलने वाला दो मील यदि दिन भरमें चल पावे तो बस। उसे मार्गमें या नगरमें किसीने और काम बता दिया तो छुट्टी। वह कहाँ स्मरण रख पाता है कि वह किसी और कामसे आया है।

'लेकिन यदि किसीकी दवा लाना हो तो दौड़ा जाता है।' श्यामके पिताने बताया—'फिर वह किसी दूसरेका काम नहीं सुना करता।'

'वह मन्दिरमें नहीं जाता।' श्यामने बताया—'उससे मन्दिरमें जानेको कहनेपर कहता है—'उसके तो बहुत नौकर हैं। मैं क्यों करूँ उसकी नौकरी ? तेरी नौकरी करूँगा मैं।'

'उसके घर नहीं है। किसीके यहाँ पड़ा रहता है, किसीके घर रोटी माँगने जा पहुँचता है। कोई कुछ कहे —वह हँसता रहता है।' यह सब हमें श्याम पहिले ही बता चुका था।

सहसा एक फटे, मैले चिथड़े पहिने, कुछ ठिगना, मोटा गोरे रंगका अधेड़ पर्वतीय आ गया वहाँ। उसके पैर बिवाइयोंसे चिथड़े हुए। उसकी अँगुलियाँ मोटी और कठोर। उसका शरीर अस्वच्छ; किन्तु उसके निर्मल नेत्र, उसका बाल-सुलभ हास्य और उसके ललाटपर तेज हमने देखा।

'पगला है !' श्याम हँस पड़ा।

'आइये। बैठिये !' मैंने उसे कम्बलपर बैठनेको

कहा और वह बिना किसी संकोचके मेरे सामने बैठ गया।

'क्या काम है ?' पर्वतीय भाषामें उसने श्यामके पितासे पूछा।

'बाबूजीने बुलाया है !' श्यामके पिताने उसी भाषामें उसे बताया और वह मेरी ओर देखने लगा।

'कुछ खाओगे ?' मैंने पूछा और स्वीकार करनेपर उसे श्यामके पिताने भात-दाल दिया। खा-पीकर फिर उसने पूछा—'क्या काम है ?'

'तुम जोगी हो। आशीर्वाद दो !' मैंने उससे कहा।

'हम तो तुम्हारा नौकर है। सबका नौकर है बाबू !' पगला जैसे चौंक पड़ा। उसका वह चौंकना, वह दैन्य ! और अब आप सोचिए—महान् जीवन किसका ? उन तपस्वीका या इस पगलेका ?

---

# स्वस्थ समाज

आजकी घटना नहीं है, लगभग ३५ वर्ष हो चुके इसे। उस वर्ष हिमालयमें हिमपात अधिक हुआ था। श्रीबद्रीनाथजीके मन्दिरके पट वैसे सामान्य स्थितिमें अक्षय तृतीया ( वैशाख शुक्ल ३ ) को खुल जाया करते हैं; किन्तु मैं जब जोशीमठ पहुँचा तो यात्री वहीं रुके थे। पट तबतक भी खुले नहीं थे। मैं अक्षय तृतीया वृन्दावन ही करके चला था। मार्गमें तीन-चार दिन तो ऋषिकेश तकमें ही रुकते-रुकाते लगे थे और तब मोटर, बस केवल देवप्रयाग तक जाती थी। आगेका मार्ग हमने पैदल पार किया था।

मेरे भाग्य-देवता अनुकूल थे। मैं जोशीमठ पहुँचा और पता लगा कि आज ही शामको पट खुलनेवाला है। जब मैं श्रीबद्रीनाथधाम पहुँचा, मार्गोंपर तीन-चार फुट बरफ पड़ी थी और दूकानदार फावड़ोंसे बरफ हटा-कर अपनी दूकानोंके द्वार खोलनेके प्रयत्नमें लगे थे।

स्मरण नहीं रहा, दूसरे या तीसरे दिन अपने एक मित्रके साथ मैं श्रीबद्रीनाथधामसे आगे व्यास गुफा सहस्रधारा तक चला गया था। साथमें एक युवक पर्वतीय ब्राह्मण थे मार्गदर्शनके लिए। दो-तीन स्थानोंपर हमने अलकनन्दाकी धारा बरफके नैसर्गिक पुलसे पारकी। लेकिन जब हम दोनों सहस्रधाराके ऊपरकी गुफापर चढ़ने लगे और मार्गदर्शकके मना करनेका हमपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, तब हम जान भी नहीं सके, हमें भाग्य भरोसे

छोड़कर कब मार्ग-दर्शक महोदय चुपचाप खिसक आये।

ऊपर किसी प्रकार हम पहुँचे भी और लौटे भी। लौटते समय या तो हम मार्ग भूल गये थे अथवा जिस हिमनिर्मित पुलसे हमने अलकनन्दाको जाते समय पार किया था, वह इतनी देरमें टूट चुका था। हुआ कुछ भी हो, हमें माना गाँवके पास होकर घूमकर आनेको विवश होना पड़ा।

माना गाँव सुनसान पड़ा था। घरोंके द्वारोंपर ताले सीलबन्द पड़े थे। वहाँके निवासी जो सर्दियोंमें नीचे चले गये थे, अभी तक लौटे नहीं थे। जीवनमें पहली बार एक जनहीन गाँव देखा—अद्भुत लगा वह सुनसान। मेरे मित्र आगे बढ़ गये। सन्ध्या समीप थी, बादल हो आये थे और वर्षा किसी भी क्षण सम्भव थी। हमारे पास न छाता था, न बरसाती कोट। अतः स्थानपर पहुँचनेकी शीघ्रता स्वाभाविक थी।

सहसा मेरे पैरोंने चलना अस्वीकार कर दिया। मेरी क्या अवस्था हुई—कह नहीं पा रहा हूँ। आप सोच लें—मेरे आस-पास कोई नहीं था। उज्ज्वल हिमाच्छन्न पर्वत और पीछे एक जनहीन गाँव। मित्र कितनी दूर आगे चले गये थे, जाननेका कोई साधन नहीं और सहसा सामने केवल दस गज दूर एक महाकाय आकृति आ खड़ी हुई। एक गम्भीर स्वर हुआ।

कुछ क्षण लगे मुझे अपनेको आश्वस्त करनेमें। मेरे सम्मुख वे जो कोई भी थे—मुझे आश्वासन दे रहे थे कि मैं भय न करूँ। हाँ, वे पुरुष थे—मानव पुरुष;

किन्तु उनका वह विशाल शरीर—मैं उनके घुटनोंसे कुछ ही ऊँचा होऊँगा। नाभिसे नीचे तक लटकती हिमधवल दाढ़ी, सुपुष्ट दीर्घ भुजायें और—लेकिन मैं उनके तेजो-दीप्त मुखको भली प्रकार देख कहाँ सका था। उनकी ओर देख पाना सरल नहीं था। मैं वहाँ खड़ा रह सका, यह कम नहीं था।

'कौन हो तुम ?' उन्होंने शुद्ध देववाणीमें पूछा था।

'मै संस्कृत समझ लेता हूँ, किन्तु बोल नहीं सकूँगा।'

अब मैंने अपनेको कुछ अधिक आश्वस्त कर लिया था। उन्हें मैंने पृथ्वीपर मस्तक रखकर प्रणाम किया और नाम बताया।

'गोत्र ?' प्रश्न हुआ।

'सावर्णि' मैंने उत्तर दिया और वे इतने खुलकर हँसे कि पर्वतमालाएँ मुझे काँपती प्रतीत हुईं।

'भगवन् !' मैं केवल सम्बोधन करके चुप हो गया। क्या पूछना, यह समझ नहीं पाता था।

'कोई विशेष बात नहीं' वे सौम्य स्वरमें बोले—'तुम्हारे कुलपुरुष भगवान् विवस्वानके आत्मज सावर्णि हैं—आगामी मन्वंतरके मनु। तुम्हारा यह क्षीणकाय—उन मार्तण्ड-तनयके सम्मुख मैं भी इतना ही ह्रस्वदेह, अल्पप्राण प्रतीत होने लगता हूँ। कहीं तुम अपने उस कुलपुरुषका साक्षात् कर सको.. ...।' लेकिन वे इस बार हँसे नहीं।

'भगवन् आप ?' मैंने जिज्ञासा की।

'मेरा जन्म त्रेताके अन्तमें हुआ था।' उन्होंने सहज

भावसे कहा—'तबतक मानव-देह ह्रासको प्राप्त हो चुका था और तुम्हें तो देखकर ही प्रतीत होता है कि धरापर अब कलिका कितना व्यापक प्रभाव है।'

अब मुझे स्मरण आया कि पुराण-वर्णित कलापग्राम कहीं यहाँसे पास ही होना चाहिए। अवश्य मेरे सम्मुख जो दिव्य पुरुष उपस्थित हैं, वे वहींके निवासी होंगे। मेरे मनमें उस भूमिके दर्शनकी इच्छा प्रबल होने लगी।

'वत्स ! उत्कण्ठा व्यर्थ है।' मेरे प्रार्थना करनेसे पूर्व ही उन्होंने कहा—'कलापग्रामकी भूमिपर तुम जा सकते हो और तुम्हारे अनेक साथी जाते-आते हैं; किंतु उसके निवासी जबतक स्वयं न चाहें, उन्हें तुम देख नहीं सकते। मैं वहाँ कोई क्षमता नहीं रखता।'

'वे कृपा कर सकते हैं!' मैंने अनुरोधका प्रयत्न किया।

'तुम्हारा समाज स्वस्थ नहीं रहा है। अस्वस्थ समाजमें अस्वस्थ देह उत्पन्न होते हैं।' उन्होंने समझानेकी चेष्टा की—'हम सब अति दीर्घकालसे केवल इसलिए अपनेको रखनेमें सक्षम हुए हैं; क्योंकि अस्वास्थ्यके संक्रामक प्रभावको हमने अपने तक नहीं पहुँचने दिया।'

'समाज अस्वस्थ ?' मेरी समझमें बात ठीकसे आ नहीं सकी थी।

'मनुष्य सदा दुर्बल रहा है।' वे कह रहे थे—'उससे त्रुटि नहीं होगी, उसके पद वासना-विचलित नहीं होंगे, यह कभी सम्भव नहीं हुआ; किन्तु सत्य जीवनका स्वास्थ्य है। अपनी च्युतिको स्वीकार करनेका साहस जब

तक मानवमें हैं, पाप अपने पद जमा नहीं पाता। समाज स्वस्थ बना रहता है। व्यक्तिके स्खलन संक्रामक बननेकी शक्ति नहीं पाते। पाप पनपता है जब सत्यकी स्वीकृति-का साहस नहीं रह जाता और तब समाज अस्वस्थ हो जाता है।'

सहसा मुझे अनेक पौराणिक कथाओंका स्मरण हो आया। महर्षि अगस्त्य, भरद्वाज, सत्यकाम, भगवान् व्यास आदिकी उत्पत्ति—लेकिन किसीने भी कहाँ सत्यको स्वीकार करनेमें कहीं हिचक दिखलायी। शाकुन्तल भरत पता नहीं कौन बनते यदि दुष्यन्तने उन्हें अपना औरस स्वीकार न किया होता ?

साथ ही मुझे स्मरण आयी आजकी अपनी अवस्था। 'पाप पनपता है जब सत्यकी स्वीकृतिका साहस नहीं रह जाता।' ये महापुरुषके शब्द जैसे वज्रघोष कर रहे थे। आजका अनाचार, घूसखोरी, चोरबाजार, छल-प्रपञ्च असत्यका अवलम्बन किये बिना इनमेंसे एक भी दो क्षण ठहर सकेगा।

कुछ क्षण—पता नहीं कितने क्षण मैं मस्तक झुकाये अपने चिन्तनमें ही लीन रह गया और जब मैंने फिर नेत्र उठाये, सम्मुख कोई नहीं था। वही हिमाच्छादित पर्वतमालाएँ, वही तीव्रवेगा अकलनन्दा और वही पीछे सुनसान मानागाँव।

मेरे मित्र मुझे पीछे आता न देखकर लौट पड़े थे और पुकार रहे थे। बादल अधिक घने हो आये थे। सर्दी लग रही थी। मुझे यों भी रोमांच हो रहा था। वहाँसे

शीघ्रतापूर्वक निवासस्थानकी ओर चल देना आवश्यक था।

आज भी वह संस्मरण शरीरमें रोमांच कर देता है। कह नहीं सकता—मैंने जो कुछ देखा, सत्य ही था अथवा मानागाँवकी शून्यताके अनुभवसे अभिभूत मस्तिष्कने उसे दिखलाया था, किन्तु 'सत्य जीवनका स्वास्थ्य है' इसे अस्वीकार कैसे किया जा सकता है। समाजके स्वास्थ्यका मूलमन्त्र जो उस दिन मिला—उस सत्यको आप स्वीकार करेंगे ही।

---

# अग्निको अजीर्ण हुआ

' इतना सुस्वादु हविष्य !' महाराज मरुत्का भुवन-विख्यात यज्ञ प्रारम्भ हो गया था। यज्ञके समस्त उप-करण विशुद्ध स्वर्णसे प्रस्तुत किये गये थे। देवताओंने प्रत्यक्ष आसन स्वीकार किया। देवगुरु बृहस्पति, महर्षि कश्यप, योगिराज अंगिरा, महामुनि वशिष्ठ, प्रजापति कर्दम साक्षात् मूतिमान श्रुतिसे सर्वज्ञ तपोमूर्ति ऋत्विक बने थे। एक सहस्र वेदज्ञ विप्रोंने सामगानके साथ अखण्ड घृतधारा देनी प्रारम्भ की। अग्निदेव आह्लादित हो उठे! ' महाराज मरुत् मुझे तृप्त कर देंगे!'

' अधिक लोभ बुरा होता है।' महर्षि अंगिराने कुशसे जलविन्दु उठाकर अग्निका प्रोक्षण करते हुए सावधान किया ' यज्ञकी प्रत्येक आहुति यज्ञेशके लिए है। तुम उसे अपना उपभोग्य बना रहे हो! देवताओंको वितरित करनेवाले प्रतिनिधि मात्र बने रहनेमें तुम्हारा कल्याण है।' महर्षिके दिव्य ज्ञानने सूचित कर दिया कि यदि अग्निदेवका प्रमाद बना रहा तो उनके कार्यका भार महर्षिके ऊपर पड़ेगा।

' देवताओंने अपना भाग ग्रहण कर लिया!' अग्नि-देव मन्त्रपूत, स्वभावशुद्ध, श्रद्धासंचित आज्यधाराके रसास्वादमें निमग्न हो चुके थे। रसनाका रस क्या किसी-को पेटकी पाचिका शक्तिका ध्यान रखने देता है। ' महा-राज निरन्तर उनका आतिथ्य कर रहे हैं और वे भी उनके सत्कारको स्वीकार करनेमें संकोच नहीं करते।'

जब दूसरे संकोच नहीं करते तो अग्निदेव ही क्यों करें।

'यज्ञावशेष ही अमृत भोजन है।' देवगुरुने अपने शिष्यको सावधान किया प्रोक्षण द्वारा। 'अग्रभोक्ता होना अल्पशक्तिके लिए सदा हानिकारक होता है।'

'यज्ञ मेरी ही अर्चाके लिए आरम्भ होता है।' अग्निदेवने यज्ञको सचमुच ही अग्नि-आराधन मान लिया। श्रुति किस अग्निका संकेत करती है, यह उन्हें स्मरण ही नहीं रहा। 'प्रलयके समय सूखे गोमय पिण्डकी भाँति सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको क्षार कर देनेकी महाशक्ति जिसमें है, उसे छोड़कर अग्रभोजी कौन होगा ?' अहंकारके साथ अग्निकी नील-लोहित लपटें ऊपर उठीं।

'तुम एक तृण भी जलानेमें असमर्थ हो गये थे।' महर्षि कश्यपने पुत्रके अहंकारको शमित करनेके लिए प्रोक्षणिका उठाई। 'जब जीव अपनी किसी शक्तिके ऊपर गर्व करके असंयत होने लगता है, सर्वशासक सत्ता उससे वह शक्ति छीन लेती है।'

'आप उस यज्ञकी बात कहते हैं !' पिताकी गम्भीर चेतावनी हँसीमें टाल दी गयी। उपभोगके रसका जब अनुभव होता है, उपदेश सुननेकी स्थिति मनकी नहीं रह जाती। 'वह व्यापक सत्ता पूर्णकाम है : उसे इन आहुतियों और घृत-धाराकी अपेक्षा ही नहीं।' हम भूल भी करते हैं, यह मानना स्वभाव ही नहीं है। यदि विवशतः भूल मानना पड़े तो उसका कारण पाना कठिन नहीं होता। जिसे आहुतियोंकी आवश्यकता नहीं, उसे न देना कोई अपराध तो हुआ नहीं। यह कौन सोचे कि

दूसरेकी आवश्यकता देखनेकी अपेक्षा अपना कर्तव्य देखना उचित होता है।

'अब बस !' एक सहस्र ब्राह्मण पूरे सहस्र वर्षों तक अखण्ड धार देते रहे। वे तपःपूत, अमर महर्षि—उन्हें श्रान्त नहीं होना था। महाराजका आमन्त्रण कामधेनुने स्वीकार कर लिया था। आज्य पात्र उनकी स्नेह दृष्टिसे अक्षय हो चुके थे। हाथीके सूँड़के समान मोटी घृत-धाराएँ अखण्ड गिरती रहीं, गिरती ही जा रही थीं। स्वादसे तृप्ति हो या न हो, उदरकी सीमा है, अग्निदेवके उदर की सीमा हो चुकी। एक छटाँक नहीं, एक तोला नहीं, एक बिन्दु भी नहीं। उनके यहाँ घृत-सीकरतक आत्मस्थ करनेका अवकाश नहीं।

'प्रभो ! अभी पात्र रिक्त नहीं हुए।' महाराजने बड़ी नम्रतासे प्रार्थना की। 'केवल सहस्र वर्ष ही तो हुए हैं।' देवताओंके सहस्र वर्ष हो चुके, पर महाराजको लगता है, अभी कल तो यज्ञका प्रारम्भ ही हुआ है। न एक कल्प, न एक चतुर्युगी और न एक पूरा युग ही। यह भी क्या यज्ञ हुआ।

'सम्राट आपका कल्याण हो !' यज्ञकुण्डमें केवल धूम्र उठ रहा था। न लपटें थीं, न अंगारे और न चिन-गारियाँ ही। 'आपके पात्र अक्षय हैं ! आपके दिव्य लोक अक्षय हों।' अग्निदेवने आशीर्वाद दिया।

'मुझे कोई दिव्य लोक नहीं चाहिए।' महाराजने तो स्वप्नमें भी किसी लोककी कामना नहीं की। महेन्द्र उन्हें अपने सिंहासनपर बैठाकर स्वयं चामर ग्रहण

करनेमें अपना सौभाग्य मानते हैं। लोक-पितामहका दिव्य पद्म जैसे उनके पिताका गृह हो। असुरोंके अधिपति उनकी मित्रताके अभिलाषी हैं। ऐसा कोई लोक नहीं, जिसमें उनके धनुषपर ज्या चढ़ते ही ध्वंसका ताण्डव न प्रारम्भ हो जाय। उनकी भृकुटिपर बल आते ही दानवेन्द्र तक करबद्ध मिलेंगे। किस लोककी वे इच्छा करें? किसके लिए यज्ञ करें? उनके यज्ञ तो यज्ञेशके तोषके लिए अखण्ड रहें, बस हो गया—'आप आहुतियाँ स्वीकार करते रहें, मेरा इतना ही अनुरोध है।'

'मेरी शक्तिकी सीमा हो चुकी! यह ब्राह्मण आपके रोषका पात्र नहीं है।' अग्निदेवने यज्ञकुण्डको छोड़ दिया। उन्हें विश्राम चाहिए।

( २ )

बड़ा पेट, पीला मुख, उभड़ी नसें, पतले-पतले हाथ पैर और दीखती ठठरियाँ देखकर वैद्यजी कह देंगे यह अति मन्दाग्निका रोगी है। पूरे विश्वको यदि यही रोग हो जाय?

सूर्यका तेज मन्द हो गया। प्राणियोंकी क्षुधा मृतप्राय हो गयी। वृक्षों और लताओंमें जीवन ही जैसे न रहा हो। पीले-पीले पत्ते, सिकुड़ी टहनियाँ, मुरझाये कुसुम। शापके भयसे मन्त्रपाठपूर्वक जब अरणि-मंथन होता है, अग्निदेव उपस्थित होते हैं। उनमें एक आहुति लेनेकी भी शक्ति नहीं। धुआँ—केवल धुआँ उठता है हवनीय कुण्डों से। उष्णता ही जीवन है। उसे स्वयं अजीर्ण हो गया था।

'आप लोग सर्वसमर्थ हैं ! मुझ पर दया कीजिये।' अश्विनीकुमारोंसे अग्निदेवने प्रार्थना की। 'उनका सिर चक्कर करता है। पेटमें असह्य पीड़ा है। चला जाता नहीं। बराबर ऋषिगण आह्वान कर रहे हैं। पता नहीं कब कौन शाप दे दे !' इन भारतीय ऋषियोंका भय उन्हें और विकल किए है। ऋषियोंकी नित्य क्रिया अवरुद्ध है। कुशल इतनी है कि दुर्वासाजी समाधिमें हैं। क्या ठिकाना वे कब जागृत हो जायँ।

'हमारी औषधियाँ आपका कैसे लाभ करेंगी ?' जिसे दीप्त करनेके लिए बटी, चूर्ण, अवलेह, क्वाथ आदि बनते हैं, स्वयं उसीको अजीर्ण हो जाय तो औषधियोंमें उष्णता कहाँसे आवे ? 'आजकल आपकी तटस्थतासे सब पदार्थ शीतवीर्य हो गये हैं। सबको अजीर्णकी औषधि चाहिए। कोई निरोग नरोग नहीं, सबको एक ही रोग और उस रोगकी औषधि रही नहीं। औषधि होती तो क्या वैद्य स्वयं रुग्ण बने रहते।'

'आप लोग ही कुछ न करेंगे तो···!' वैद्य कोरा उत्तर दे दे, यह रोगीको कितना अखरता है।

'आपको संयम करना चाहिए।' अब स्थिति चिकित्साके बाहर जा चुकी। वे सुर वैद्य क्या करें ? 'गुरुदेवसे कोई अनुष्ठान पूछिये।' असाध्य रोग हो जाने पर वैद्यकमें भी 'अच्युत, अनन्त, गोविन्द।' यह भगवन्नाम ही अन्तिम परमौषधि स्वीकार की गयी है।

'अनुष्ठानोंसे मनुष्य देवताओंकी आराधना करता है। जब आराध्य ही रोगी हो जाय तो उसे कौन अच्छा

करे।' देवगुरुने अग्निदेवको कोई अनुष्ठान बतलाना अस्वीकार कर दिया। 'सम्भव है कैलाशबिहारी प्रभु कोई मार्ग बता सकें।' जो समस्त विद्याओंके प्रवर्तक हैं, वे योगीश्वर कुछ उचित उपाय बतावेंगे, यह उचित आशा थी।

'रोग जिस कारणसे हुआ हो, उसका विपरीत आहार-व्यवहार उसे नष्ट करता है।' आयुर्वेदके उद्‌गाता उन भोले बाबाको औषधि बतानेमें कितनी देर लगती है। 'तुम मन्त्रपूत घृतके अधिक आहारसे, रुग्ण हुए हो, असुरों, नागों एवं हिंस्र पशुओंकी उत्तेजक 'वसा' तुम्हें आरोग्य प्रदान करेगी।'

'मैं शक्तिहीन हो रहा हूँ!' अग्निदेवने प्रार्थना की। यदि भगवान् रुद्र अपने इस तृतीय विग्रहपर दया करें। 'असुर मुझसे प्रबल हैं।'

'मैं उपाय बता सकता हूँ।' आशुतोषका न कोई अपना है और न पराया, फिर भी अपने आराधक असुरों-पर अकारण वे पिनाक कैसे चढ़ा लें? 'तुम खाण्डववन जला डालो।' भूमिपर असुरों, नागों आदिका वह निवास हो गया है। लोकपति उन हिंस्रोंके उत्पीड़नसे आर्त प्राणियोंको कष्टमुक्त करनेकी बात सोचते हों, यह सहज स्वाभाविक है।

'देवराज, आप मुझे अनुमति दें!' अग्निदेवको पता है कि सुरपति आजकल खाण्डवकी विशेष रक्षा करते हैं। उनके आदेशसे चन्द्रदेव वहाँके तरुओंको अधिक पोषण प्रदान करते हैं।

'असुर हमारे बन्धु हैं !' महेन्द्रमें अकारण यह बन्धुत्व नहीं जागृत हुआ है। महारानी शची उन्हें प्राणोंसे अधिक प्रिय हैं। उन्होंने देवराजसे प्रार्थना की है कि उनके पितृकुलके परम पूज्यका तपःकानन सुरपति सज्जित कर दें। अमरावतीकी अधीश्वरीका इतना-सा अनुरोध कैसे टाल दिया जाय ? 'दानवेन्द्र मय समस्त सुरासुरके लिए सम्मान्य हैं। वे आजकल खाण्डवमें शिवार्चन करते हैं। हमें उनकी सेवामें अपना सौभाग्य मानना चाहिए।' एक उपदेश दे डाला देवराजने।

'मेरी विनय और विद्रोह दोनों विफल हुए !' अन्ततः गुरुदेव ही तो संकटमें आर्तजनको आश्रय देते हैं। अपनेपर आपत्ति पड़ती है तो पता लगता है। दूसरोंको कष्टमें देखकर संयम, सन्तोषका उपदेश देनेवाले बहुत लोग मिलते हैं। सुरराजके उपदेशकी अवज्ञाका अग्निदेवको कोई कष्ट न था ; किन्तु प्रलय मेघोंके सम्मुख उनकी शक्ति तुच्छ थी। महेन्द्रने खाडण्वमें प्रवेश करते ही उन्हें इस प्रकार वर्षाके बिन्दु-बाणोंसे भागनेको बाध्य कर दिया था, जैसे शशकको किसीने छिपनेपर बाध्य किया हो। पराजयकी ग्लानि, उदरकी पीड़ा दोनों उन्हें व्याकूल किये थीं। व्याधिसे परित्राणका दूसरा मार्ग था भी तो नहीं।

'द्वापर तक प्रतीक्षा कीजिये !' देवगुरुने स्पष्ट कह दिया 'जिस यज्ञेशका भाग आपने अपना मानकर उदरस्थ कर लिया, वह जबतक लीला-विग्रहसे धरापर अवतीर्ण न हों, खाडण्व-दाह हो नहीं सकेगा। सुरेन्द्रकी

वृष्टिको अपने बाणोंसे वारित करनेकी शक्ति केवल नरमें है और वह भी जब नारायणका सान्निध्य उन्हें प्राप्त हो। इस समय तो वे प्रभु अपने युगल विग्रहमें दण्डन्यास करके बदरिकाश्रममें तपोलीन हैं।'

'द्वापर—बहुत दूर है!' अग्निदेवने दीर्घ निःश्वास ली। उन्हें क्या ज्ञात था कि कि सहस्र वर्षोंका घृतपान इतनी दीर्घ व्याधि देगा। क्षणोंका असंयम ही तो वर्षोंके लिए रुग्ण बनाता है। प्रतीक्षाके अतिरिक्त उपाय नहीं था। प्रतीक्षा स्वयं प्रायश्चित्त है, क्योंकि उसकी विवशता पश्चात्तापको प्रकट करती है। अग्निदेवको तो सर्वेशकी पावन प्रतीक्षा करनी है।

( ३ )

'आप स्वयं अग्निस्वरूप हैं। लोककी रक्षा करनेमें आप ही समर्थ हैं।' देवता, प्रजापति, ऋषिगण, साध्य, गन्धर्वादि सभी आशापूर्ण दृष्टि लगाये करबद्ध खड़े थे। 'आपकी दया ही हमें बचा सकती है। हम आपकी शरण हैं।' सबके स्वरोंमें कातरता थी। अग्निदेव अजीर्णके कष्ट, पराजयकी ग्लानि और क्षोभसे अदृश्य हो गये थे। उष्णताके बिना जीवन कैसे रहे? पृथ्वी हिमपातसे श्वेत होती जा रही थी। स्वर्ग आहुतियोंकी सुरभिके अभावमें उपोषित था।

'सर्वभक्षी अग्निका प्रतिनिधित्व करना मुझे स्वीकार नहीं।' सचमुच जो आहारमें पदार्थके स्वरूप-दोष, स्पर्श-दोष, दृष्टि-दोप, भाव-दोष, क्रिया-दोष एवं काल-

दोषके पंचदोषोंका विचार करता हो और इनसे रहित पदार्थ भी जिसके तपके पारणमें युगोंके पश्चात् कुछ कणोंमें आवश्यक होते हों, वह सर्वभक्षीका प्रतिनिधित्व कैसे करे ?

'आपका दिव्य तेज आवहनीय, प्रजापत्य एवं ब्राह्म-कुण्डोंमें प्रतिष्ठित होगा।' दक्षिणाग्निके अभिचार द्वापर तक न भी हों तो कोई हानि नहीं थी। अन्त्येष्टिके लिए अग्नि उपलब्ध न हो तो सरिता-प्रवाहकी विधि विवशत: काम आ जायगी; किंतु नित्य कृत्य ही वहाँ तो रुके हुए थे। 'भगवान् भास्कर आपके तेजसे भासमान होकर लोकको जीवन प्रदान करेंगे।'

'सूर्य तो सर्वदर्शी हैं और सर्वस्पर्शी भी।' महर्षि अङ्गिराने आदित्यको लज्जित कर दिया। एक नियम-निष्ठ तापस शुद्धाशुद्ध, विहित अविहितका विचार छोड़-कर न तो सभी दृश्योंको देख सकता और न सबका स्पर्श कर सकता। 'लोकदर्शन और पदार्थोंके स्पर्शमें मेरी सहज अरुचि है।' महर्षि किसी देवताकी अवगणना नहीं करना चाहते थे। जिसके चित्तकी गति अन्त:के आनन्दघनको उपलब्ध करके बाह्यसे विरत हो चुकी है, उसके लिए बाहरी व्यापार उतने ही कष्टसाध्य हैं जैसे हमारे लिए अन्तर्मुखता।

'प्राणियोंके प्राण आहारके बिना व्याकुल हो रहे हैं। उनके जठरको कफने आक्रान्त कर लिया है।' सबको आशा थी कि जीवपर सहज स्नेह करनेवाले ऋषि उनके कष्टमें द्रवित होंगे। 'आपका तप:तेज उन्हें सक्षम बनाने-

में समर्थ है।'

'आप सब प्रकारान्तरसे मुझे सर्वभक्षी ही तो बनाना चाहते हैं।' प्राणियोंका आहार कुछ एक प्रकारका तो है नहीं। उनके जठरमें स्थित होनेका अर्थ ही उनके विविध आहारको स्वीकार करना है। 'मैं अपनेमें इतनी शक्ति नहीं देखता। आप मुझे क्षमा करें।' स्वरमें भाव स्पष्ट था कि मेरे एकान्त तपमें बहुत व्याघात हो चुका। अब अधिकके लिए अवकाश नहीं है।

'वत्स !' पितामहका हंस आकाशसे अवतीर्ण हुआ इन्हीं क्षणोंमें।

'पितः !' सार्घ्य हस्त महर्षिने प्रोत्थान दिया।

'तुम प्रजापति हो। तुम्हारी प्रजा नष्ट हो रही है।' स्रष्टाके स्वरमें स्नेहपूर्ण उपालम्भ था। 'तपका उद्देश्य होता है। विश्वरूप विश्वेश तुम्हारी सेवाकी प्रतीक्षा करते हैं। तुम उसे अस्वीकार कर दोगे ?'

'सबके सब प्रकारके प्रयत्नोंका प्रेरक बनाना, सबके सब प्रकारके आहारको पचाना, सब कुछ देखना, स्पर्श करना, ग्रहण करना !' महर्षिकी वाणी व्यग्र होती जा रही थी। जैसे किसी नियमनिष्ठ विप्रको बलात् चाण्डालके कामपर नियुक्त किया जा रहा हो।

'सब प्रकारके जीवोंका निर्माण, सबके कर्मोंके अनुसार अवयवोंका विधान, सबके आक्रोश एवं अभिशापका स्वीकार।' भगवान ब्रह्माकी वाणी गम्भीर बनी रही। 'तुम मेरे कर्मोंको देखते हो न। कर्मको ही देखनेपर मैं तुम्हारे लिए अस्पृश्य हो जाऊँगा। क्रियामें कहाँ

पवित्रता और अपवित्रता है। तुम उसे आराध्य बनाओ जो तुम्हारे सम्मुख विविध रूपोंमें उसे स्वीकार करने उपस्थित हुआ है।'

'मेरी शक्ति अल्प है।' हृदय स्वीकार नहीं कर रहा था। शालीनता प्रतिवाद नहीं करने दे रही थी। बड़ी विचित्र स्थिति थी।

'द्वापरके अन्तमें प्रभु अवतीर्ण होंगे, अग्निका अजीर्ण दूर हो जायगा। कलिके पापकृत्य, हिंसप्रदाह और पैशाचिक आहारका तुम्हें साक्षी नहीं बनना है।' ब्रह्माजीने आश्वासन दिया। 'आराधना और पोषण; केवल यही दो कार्य अभी प्राणियोंने सीखे हैं। भोग और उत्पीड़न कलिमें आवेगा। तुम इन दोनोंके माध्यम बनकर सुयश, पुण्य एवं प्रभुके प्रसादका ही अर्जन करोगे। उन शक्ति-सिन्धुसे तादात्म्य करो। शक्ति तो सदा उनकी है। हम सब तो निमित्त हैं। निमित्त बननेमें हमें आपत्ति क्यों होनी चाहिए।'

हंसके पक्षोंसे सामके सरस स्वर गगनमें व्याप्त हो गये। देवताओंको आश्वासन प्राप्त हो गया था। महर्षि मस्तक झुकाये सोच रहे थे।

( ४ )

'अन्नके अनेक प्रकार, उनकी अमेध्यता, रूक्षता, कटुता।' महर्षि अंगिराके मनमें आया ही नहीं कि भोजनमें भी स्वाद होता है। श्रुति जिसे रस-रूप कहती है, उसीका रसाभास जहाँ विकृत रूपमें उपलब्ध हो, वहाँ

रसानुभवका रागी कैसे सरलता अनुभव करे।

'जीवो जीवस्य जीवनम्' प्राणी प्राणीको ही आहार बनाते हैं।' पशु-जगतपर दृष्टि गयी। बड़ा वीभत्स भाव आया। 'कोई हिंसा तो करता नहीं और ये कर्मयोनिके प्राणी स्वभावतन्त्र हैं। उनके कर्मोंमें कहीं दोष नहीं।' उस समय आजके हिंसक पशुओंको भी हिंसाकी आवश्यकता नहीं थी। वे तो प्रकृतिके स्वच्छताके चर हैं। मृत प्राणियोंके शरीर ही स्वाभाविक आहार हैं उनके। मनुष्यकी हिंसाने उनको हिंस्र बना दिया। वन काट डाले गये, पशु क्षीण हो गये। क्षुधा-विवश मनुष्य भी तो अकार्य करता और अखाद्य खाता है।

'वृक्षोंसे स्वतः प्राप्त फल तथा निर्झरोंका निर्मल नीर—मानव इनसे सन्तुष्ट कहाँ रहता है।' आलोच्य तो मनुष्य ही हैं। उन्हींके कर्म उनको तथा उनके सहायकोंको बाधित करते हैं। फलोंके अतिरिक्त पता नहीं क्या-क्या चूसना है उसे, मेवोंके अतिरिक्त वह और भी अटर-सटर चर्वण करेगा, जलसे तृषा बुझाकर भी उसे फलोंका रस पीना है और अवलेह्य—निरी पशुता है यह तो!' महर्षिको चर्व्य, चोष्य, पेय और लेह्य चारोंमेंसे एक भी आहार मनुष्यका ऐसा न जान पड़ा, जिसका वे समर्थन करें।

'कटु'—पता नहीं क्यों मनुष्यको उष्ट्र (ऊँट) बनना रुचिकर है। जब स्वादुफल हैं तो तापस भी इंगुदी नहीं ग्रहण करता।' तपस्वीका आदर्श तो तपस्वी ही होगा। 'तिक्त तो तभी ग्राह्य हो सकता है, जब रसना-

को दण्ड देना हो। उदरके अंग तो कोई अपराध करते नहीं। उन्हें संतप्त करना स्वयं अपराध है। यही दशा क्षारकी है। क्षार अनावश्यक न होता तो मेरे सर्वज्ञ पिता सहज रीतिसे शरीरमें पहुँचे क्षारको स्वेदादिसे निकलते रहनेकी व्यवस्था न करते। अम्ल तो प्रत्यक्ष दन्तपंक्तिको कष्ट देता है। जिसे दन्त अस्वीकार करें, स्नायु जिससे पीड़ित हों, वह तो अग्राह्य होना ही चाहिए। ये चारों रस राजस और तामस हैं, पतनके कारण हैं, विघ्न रूप हैं।' चार रस अयोग्य मान लिये गये। वे अनावश्यक और त्याज्य थे महर्षिकी दृष्टिमें।

'कषाय पवित्र है।' यही एक रस है, जो उनको रुचिकर है। 'आमलकी परम पावन है और हरीतिकी स्वास्थ्यप्रद !' मनुष्यने इस रसको उलटे त्याज्य मान रखा है।

कषायका परिपाक मधुर है, अतः आमलकीके अभावमें आम्र, बिल्वादिसे क्षुधा-निवृत्तिमें दोष नहीं। महर्षि कदाचित ही कभी कोई और फल ग्रहण करते हैं। उनके लिए वनमें पर्याप्त आँवले हैं। 'मधुर रस सात्त्विक है। एक सीमा तक शर्करा और मधु भी ठीक, किंतु मनुष्य इनको जो विकृत कर देता है।' प्रकृतिमें पदार्थोंका जो सहज रूप उपलब्ध है, उससे भिन्न रूप उन्हें देना विकृत ही तो करना है।

'पदार्थोंके विकृत विविध रूप, एक-एक प्रकारमें अनेक अपस्वादोंका आयोजन और वह भी तृष्णाकी प्रेरणासे ! यदि मनुष्य केवल सहज रूपमें उपलब्ध

कषाय और मधुर फलोंपर ही रहना स्वीकार कर ले ? 'पित्त, कफ, रक्त, स्नायुपूर्ण प्राणियोंके शरीरमें निवास !' सोचकर ही रोमांच हो आता है। परन्तु ऐसे अपवित्र स्थानमें कैसे कोई रह सकता है। इन मनुष्योंका ठिकाना भी क्या ? वे क्या संयत रहेंगे ? आज अस्वस्थ हैं तो सब स्वीकार कर लेंगे। जहाँ तनिक शक्ति लौटी, रसनाकी तृप्तिके लिए आयोजन चल पड़ेगा।

'आप केवल हविका वहन करें। जलद-गम्भीर स्वर गूँजा। महर्षिके मनमें आज विकल्प उठ खड़ा हुआ था। बार-बार आराध्यसे हटकर इस उलझनमें लग जाता था। स्वरसे चौंककर नेत्र खुल गये और फिर पूरे खुल गये। 'प्राणियोंके शरीरमें पोषणके लिए मैं सदासे स्थित हूँ। उनके चतुर्विध अन्नोंका पाचन जठराग्नि रूपसे मैं ही करता हूँ। आपको इस उलझनमें नहीं पड़ना है।' वह वनमाली, नवीन नीरद-श्याम, चतुर्भुज, श्रीवत्स-कौस्तुभधारी यज्ञपुरुष सम्मुख खड़ा मन्द-मन्द हास्यसे दिशाओंको आलोकित कर रहा था।

'प्रभो !' महर्षिकी वाणी व्यक्त नहीं हो रही थी। शरीर अवश हो गया था। बड़ी कठिनतासे अंजलि बँध सकी। वे मूर्तिकी भाँति ज्यों-के-त्यों बैठे थे। नेत्रोंके पलक स्थिर हो गये थे। उस रूप-राशिमें अन्तर एवं बाह्य सुधा-स्नात हो रहा था।

'देवता उपोषित हैं।' मरुतोंकी गति मन्द पड़ गयी है। प्राणीकी पाचन-क्रियामें इसीसे व्याघात पड़ा। वहाँ अग्निकी अपेक्षा नहीं है। प्राण और अपानको समष्टिमें

आप आहुतियोंसे पुष्ट करें। उनके प्रबल होनेपर जठ-राग्नि अपना काम स्वतः कर लेगा। वहाँ वैश्वानर रूपसे मैं ही हूँ।' उस करुणार्णवकी कृपा अर्चाकी अपेक्षा नहीं करती। वह अमृतधारा श्रवणोंको पवित्र करती जा रही थी। 'मेरे लिए आहुतियाँ देनेमें तुम्हें सदा हर्ष हुआ है। अब उनका वहन करनेमें कोई कष्ट न होगा।'

'मेरे नाथ!' महर्षिने श्रीचरणोंपर मस्तक रखा। सेवककी रुचिका इतना सम्मान उस परमोदारके अति-रिक्त भला दूसरा कोई कर कैसे सकता है। 'तुम्हारे लिए आहुतियोंका वहन करूँगा मैं और मेरा यह अधिकार तुम कभी छीन नहीं सकोगे।' जो अपना है, उससे क्या याचना की जाती है।

'तुम केवल मेरे लिए आहुतियोंका धारण करो!' वह सदा सानुकूल नित्य प्रसन्न ही रहता है। 'तुम्हारा यह अधिकार कल्पान्त तक स्थिर रहे।'

अग्निने द्वापरके अन्तमें खाण्डव-दाह करके स्वास्थ्य तो प्राप्त किया; किन्तु न तो वे यज्ञमें यज्ञेशकी आहु-तियोंके वाहक बन सके और न प्राणियोंके जठराग्निमें प्रतिष्ठा ही मिली उन्हें। सर्वभक्षी ही रह गये वे। यज्ञकी वे दिव्य आहुतियाँ अंगिरस अग्निके लिए सुरक्षित हो चुकी थीं और प्राणियोंके जठराग्निमें षट्रस चतुर्विध अन्नोंके पाचनका कार्य उस यज्ञेशने वैश्वानर रूपमें सदा अपने पास रखा है, जिसकी अग्निने उपेक्षा करनी चाही थी और जिसने दया करके अग्निको खाण्डव प्रदान किया।

---

# निष्ठाकी विजय

'मैं महाशिल्पीको बलात् अवरुद्ध करनेका साहस नहीं कर सकता।' स्वरों में नम्रता थी और वह दीर्घकाय सुगठित शरीर भव्य पुरुष सैनिक वेशमें भी सौजन्यकी मूर्ति प्रतीत हो रहा था। वह समझ नहीं पा रहा था कि आज इस कलाकारको कैसे समझावें। 'मेरे अन्वेषक पोतोंने समाचार दिया है कि प्रवाल द्वीपोंके समीप दस्यु-नौकाओंके समूह एकत्र हो रहे हैं। ये आरब्य म्लेच्छ दस्यु कितने नृशंस हैं, यह श्रीमान्से अविदित नहीं है और महाशिल्पी सौराष्ट्रके गौरव-ध्वज हैं। उनकी रक्षा सौराष्ट्रके 'रा' (महाराज) से भी अधिक महत्वपूर्ण हैं। दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया उस शूरने। नेत्रोंमें जल आ गया था और उसका प्रशस्त भाल सूचित कर रहा था कि वह केवल आदरणीयके सम्मुख ही झुकना जानता है। दर्प एवं औद्धत्यके लिए वह सदा दुर्दमनीय है।

'मैं सिन्धुवाहिनीके महासेनापतिकी कठिनाई समझता हूँ।' एक वृद्ध हस्तिदन्तके आसनपर पारसीक सुकोमल आस्तरणपर शान्त बैठे थे। उनका शरीर दुर्बल था। झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। मस्तकके साथ श्मश्रु एवं रोमतक श्वेत हो चुके थे। केवल भुजाओंके पुठ्ठे सुदृढ़ थे और नेत्रोंमें एक अद्भुत ज्योति थी। अपने श्वेत वस्त्रोंमें महाशिल्पी सोमकेतु किसी ऋषिके समान प्रतीत हो रहे थे। उनका गौरवर्ण इतना उज्वल था मानो कला एवं प्रतिभाकी हृदयस्थ अधिष्ठात्रीका प्रकाश बाहर फूट पड़ा

हो। उनके भालपर न चिन्ता थी और न व्यग्रता। स्थिर शान्त मुद्रासे सम्मुख खड़े जल-सेनापतिको वे समझा रहे थे "लेकिन महासेनापतिको मेरी विवशता अनुभव करनी चाहिए। मैं भगवान विश्वनाथके आह्वानकी उपेक्षा नहीं कर सकता। किसी भी भयसे नहीं। वे महाकाल जो चाहेंगे, वही होगा।' शिल्पीने हाथ जोड़कर श्रद्धासे मस्तक झुका लिया।

"यदि दो दिन मुझे और दिये जाते! मैंने युद्धपोतों एवं शतघ्नी सज्जित नौकाओंको आज्ञा दे दी है।" सेनापतिके भालपर स्वेद-कणिकायें झलक उठी थीं। वे अपनी व्यग्रता एवं चिन्ता छिपा नहीं पा रहे थे। 'भाई सुवीर मुझसे सहमत हैं।' सेनापतिने पीछेकी ओर देखा। उनसे कुछ कम अवस्थाका दूसरा तरुण सैनिक पीछेसे समीप आ गया।

"महासेनापति ठीक कह रहे हैं और यदि वायुने बाधा न दी तो हम दो दिन पश्चात् प्रयाण करके भी ठीक समय से पूर्व ही पहुँचेंगे।' सुवीरने एक साथ पूरी बात कह ली और तब महाशिल्पीके मुखकी ओर इस प्रकार देखने लगा, जैसे आदेशकी प्रतीक्षा हो।

'मैं देखता हूँ कि दोनों राजपूत एक हो गये हैं।' शिल्पी तनिक हँसे। एक क्षणमें ही उनके नेत्रोंमें गम्भीरता आ गयी। उन्होंने कहा, 'महासेनापति मुझे क्षमा करें। प्रभुकी सेवाके लिए जानेका निश्चय करके सोमकेतु भयके कारण यात्रामें विलम्ब करे तो कायर होगा। सुधीर, आज उज्जयिनीके राजपूतको प्रथम बार मैं दस्युओंसे

भीत होते तथा वायुकी दयाकी प्रतीक्षा करते देखता हूँ। तुम यदि कहते कि पोत पूर्णत: प्रस्तुत नहीं है तो भी मैं क्या करता, यह तुम भली प्रकार जानते हो।'

'राजपूत भीरु नहीं होता!" जैसे किसीने सुप्त सर्प-की पूँछ उमेठ दी हो। सुवीरका मुख अरुण हो उठा। उसने घूमकर महासेनापतिकी ओर देखा— 'मालवा या राजपूत यमराजको चुनौती देना जानता है। अवरोध उठानेका आदेश दें। राजहंस स्थिराधार उठाने जा रहा है।' वह बड़ी तीव्रतासे मुड़ पड़ा।

'सुवीर!' सेनापतिने समझाना चाहा।

'नहीं सेनापति' सुवीरने कहा चलते हुए 'मैं महाशिल्पीको जानता हूँ। 'राजहंस' प्रस्थान करेगा। और वह उस पोतके संचालन कक्षकी ओर चला गया।

'सुवीर ठीक कह रहा है।' शिल्पीने सेनापतिकी ओर शान्त दृष्टिसे देखते हुए आदेशके स्वरमें कहा— 'राजहंस प्रस्थान करेगा। अवरोधक उठानेका आदेश दें और भगवान महाकालपर विश्वास करें! जय महाकाल!'

'जय सोमनाथ!' सेनापतिने मस्तक झुकाया और उनकी दृष्टि ऊपर उस ओर उठ गयी, जिधर सुदूर कहीं सौराष्ट्रमें भगवान सोमनाथ विराजते हैं। मस्तक झुकाये ही वे पोतके प्रधान कक्षसे बाहर हुए।

अवरोहणिका उठा ली गयी। अवरोधक हटाये जा चुके थे। महाशिल्पीके उज्वल पीत 'राजहंस' ने अपने स्थिराधार (लंगर) उठाये और वह राजहंसकी भाँति समुद्रकी लहरोंपर धीरे-धीरे बढ़ने लगा।

स्तम्बतीर्थ (खम्भात) का पोतावास कूल एक छोटेसे जनसमूहसे भरा हुआ था। तटके लोगोंने पोतको उच्च जयनादसे विदा दी 'जय सोमनाथ'। पोतपरसे जयनाद गूँजा 'जय महाकाल'। पोतावासके अध्यक्ष खिन्न दृष्टिसे पोतकी ओर देख रहे थे। 'भगवान सोमनाथ मंगल करें!'

'हमने सम्पूर्ण प्रयत्न कर लिया!' सेनापतिका स्वर भरा हुआ था। 'अब सौराष्ट्रका महामाणिक भगवान वरुणदेवकी शरणमें है!' जैसे वह अपार नीलोदधि अपने उत्तुङ्ग ऊर्मिकरोंसे अभयदान दे रहा हो।

× × ×

आज तो स्तम्बतीर्थ साधारण स्थान हो गया है। उसमें भवन तो हैं; किन्तु शून्यप्राय। व्यवसाय न होनेसे वहाँके लोग अन्य नगरोंमें चले गये हैं। अपने विशाल सौधोंमें वे वर्षमें कदाचित ही दो-चार दिनोंको आते होंगे। नगरके चारों ओरका परकोटा भग्न हो गया है। उसका अस्त-व्यस्त कंकाल पड़ा है। नगर सूना है और वह व्यवसायका केन्द्र आखात नदियोंकी लायी मिट्टीसे भर गया है। अब उसमें नौकायें ही आ पाती हैं। आखात तटपर उज्ज्वल लवण की तहें चमकती हैं और क्षार-कर्दम भरा है। अब न वह श्री है, न कोलाहल। मेला उठ जानेपर जैसा तीर्थ हो जाता है, वही दशा है।

स्तम्बतीर्थमें मन्दिरोंकी बहुलता है; किन्तु अपरिचितको कोई मन्दिर वहाँ नहीं मिलेगा। मन्दिरोंपर न

तो कंगूरे हैं और न कलश। उनका निर्माण साधारण गृहोंकी भाँति है और उनके द्वार-देश भी किसीके घर जैसे ही जान पड़ते हैं। प्रायः मन्दिरोंके द्वारकी ओर पुजारीके परिवार रहते हैं और मन्दिर घरोंके भीतर जान पड़ते हैं। यह इसलिये हुआ कि म्लेच्छ दस्यु बार-बार आक्रमण करते थे। उनसे स्तम्बतीर्थ प्रायः आक्रान्त रहता था। यवन दस्यु मन्दिर भंग न कर सकें, इस दृष्टिसे मन्दिरोंको गुप्त रखा गया।

उन दिनों स्तम्बतीर्थ जलीय व्यापारका केन्द्र था। ढाकाका मलमल, उज्जयिनीकी कलाके पात्र, पाटके वस्त्र, काष्ठकी कलापूर्ण पेटिकायें, स्वर्णाभरण प्रभृति यहींसे पश्चिमीय देशोंको जाते थे और उधरसे पारसीक उज्ज्वल मुक्ता, प्रवाल प्रभृति यहीं उतरता था। यहाँका पोतावास सदा जलयानोंसे पूर्ण रहता।

नगरके चारों ओर दूर तक अरण्य और अरण्यके पीछे मरुभूमि। यह स्थिति दस्युओंके अनुकूल थी। स्तम्बतीर्थका वैभव दस्युओंके प्रलोभनका कारण था। वनमेंसे पंक्तिबद्ध सैकड़ों ऊँट लिए दस्यु सहसा आक्रमण करते और लूटपाटकर जंगलमें अदृश्य हो जाते। इन स्थल-दस्युओंसे भी अधिक आक्रमण आरब्य जल-दस्युओं-के होते थे। ये यवन दस्यु तीव्रगामिनी नौकाओं द्वारा तीरके काननमें कहीं किनारे उतर पड़ते। नौकायें किसी टेढ़े किनारेमें छोड़कर नगरपर रात्रिमें टूट पड़ते और लूट तथा हत्या करके पुनः नौकाओंसे पलायन कर जाते। समुद्रके छोटे-छोटे प्रवाल द्वीप (मूंगेके टापू) उनके

शिविर थे और वे समुद्रमें एकांकी अरक्षित पोतोंको भी घेरकर लूट लिया करते थे। इन दस्युओंके भयसे तीर्थ-यात्री इस तीर्थमें नहीं जाते। तपस्वियोंने इसे छोड़ दिया था। स्कन्द पुराणमें इसे 'तपस्विभिर्वर्जितानि' कहा गया है।

उज्जयिनीका वैभव समाप्त हो गया था। शिल्पी सोमकेतु अपनी जन्म-भूमिसे स्तम्भ तीर्थमें आ बसे थे और सौराष्ट्रने उस महान् कलाकारका हृदयसे सत्कार किया था। नगरमें शिल्पीका सदन राजसदनके समान सुरक्षित एवं सुसज्जित था। शिल्पीका निजीपोत 'राजहंस' अर्द्धसैनिक पोतके समान सज्जित रहता और प्रायः पोतावासमें खड़ा रहता था।

पोतावासके अध्यक्ष चौंके। उन्हें जलदस्युओंका पता लग चुका था और वे सिन्धु-वाहिनी ( जलसेना ) के प्रधान सेनापतिसे सुरक्षाके सम्बन्धमें योजना बना रहे थे। उन्होंने देखा कि 'राजहंस' ने उज्वल वृषभांकित पताका चढ़ा दी है और इसका अर्थ था कि पोत कोई यात्रा करने जा रहा है। उन्हें यह पता न था कि महाशिल्पी इस समय अपने पोतपर हैं। वैसे अनेक बार शिल्पी नगरसे आकर पोतपर कई दिन निवास कर जाते हैं, इसीसे उनका पोतपर होना यात्राका निमित्त नहीं माना गया था।

'स्वयं महाशिल्पी यात्रा कर रहे हैं !' सूचनाध्यक्षने आदेश पाते ही कुछ ही समयमें अध्यक्षको पता लगाकर सूचना दी। 'राजहंस' एक प्रहरके भीतर ही प्रस्थान करेगा। पोतके अध्यक्ष सुवीर संचालन करेंगे। महा-

शिल्पी मोहमयी ( बम्बई ) के सम्मुखकी किसी सागरस्थ उपत्यका तक जाना चाहते हैं।'

'अवरोधक छोड़ देनेका आदेश दो।' सेनापतिने पोतावासका द्वार अवरुद्ध करनेकी आज्ञा दे दी। पोतावासपर द्वारावरोध एवं आपत्ति-सूचक पताका उड़ने लगी।

'महाशिल्पी हमारे लिये 'रा' के समान ही आदरणीय हैं।' पोतावासके अध्यक्षने सेनापतिसे कहा—'हम राजहंसको जानेसे बलपूर्वक नहीं रोक सकते।'

'मैंने केवल तात्कालिक व्यवस्थाकी है।' सेनापतिने समाधान किया। महाशिल्पीका अपमान हम सोच भी नहीं सकते। मैं स्वयं प्रार्थना करूँगा और मुझे आशा है कि वे मेरी कठिनाईको समझकर अनुरोधको स्वीकार करेंगे !'

सेनापतिने देख लिया कि राजहंसके अध्यक्ष सुवीर अवरोहणिकासे उतरने वाले हैं। अवरोधकी सूचनाके कारण वे कुछ रुष्ट जान पड़ते हैं। अवरोहणिका पर ही सेनापतिने हँसते हुए सुवीरका अभिवादन लिया और उनका हाथ पकड़कर पोतके एक कक्षमें चले गये। अविलम्ब ही दोनों योद्धा कक्षसे निकलकर महाशिल्पीके विश्राम-कक्षकी ओर जा रहे थे। दोनों मौन थे। गम्भीर थे। दोनोंकी भावभंगी कहती थी कि वे एकमत हो गये हैं।

"क्यों सुवीर ?" यानके कक्षमें सहसा यानके अध्यक्ष को आतुरता पूर्वक आते देखकर शिल्पी अपनी शय्या पर अर्धोत्थित हो गये।

'श्रीमान् क्या कुछ क्षणको बाहर पधारेंगे ?' अध्यक्षके स्वरमें व्यग्रता थी। शिल्पी उसी धीर शान्त भावसे उठे। कोमल चरणोंमें चन्दन-पादुकाएँ आगयीं। अध्यक्षके सुपुष्ट कन्धेपर स्नेहसे कर रखकर वे कक्षसे बाहर प्रशस्तिका (डक) पर पहुँच गये। अध्यक्षने धीरेसे उनके हाथोंमें दूरदर्शक दे दिया और एक ओर संकेत किया।

'वे लगभग बीस नौकाएँ। बड़ी तीव्रतासे इधर आ रही हैं।' दूरदर्शक दृष्टिसे हटाते हुए शिल्पीने इस प्रकार कहा जैसे आने बालोंसे उसका कोई सम्बन्ध न हो।

'हम तट तक पहुँच सके तो सुरक्षित हो जायँगे।' सुवीरने कहते हुए संकेत किया। राजहंसने दिशा बदल दी गति की।

'हम भगवानके आह्वानपर जा रहे हैं ! हमारे लिये स्वेच्छासे एक पद भी पीछे हटना सम्भव नहीं !' शिल्पीने रोका।

'ये म्लेच्छ दस्यु—ये आपके पुण्य संकल्पका कोई आदर न करेंगे। स्थल दस्युही उसका आदर करते हैं। ये तो व्याधान करके प्रसन्न होंगे।'

'हम दस्युको दया पर नहीं, सर्वेशकी करुणापर विश्वास करते हैं।" शिल्पी मुस्करा उठे।

'जय महाकाल !' एक क्षण गम्भीरतासे सोचकर सुवीरते मस्तक उठाया। उसका खड्ग अपने कोशसे बाहर उठे हुये दक्षिण हस्तमें चमक रहा था।

'जय महाकाल !' नाविकोंके कण्ठसे ध्वनि हुई। अध्यक्षका संकेत वे समझ चुके थे। पतवार डालकर वे

अपनी भुशुण्डियोंको सम्हालने लगे।

'बचपन मत करो सुवीर।' शिल्पीने अध्यक्षके स्कन्धको स्नेहसे थपकी दी। 'हम भगवान महाकालके आह्वानपर जा रहे हैं। हमारा एकमात्र कार्य है पूरी शक्तिसे उधर ही चलना बाधाविघ्नोंकी चिन्ता हमें क्यों हो? तुम्हारे इस युद्धका अर्थभी क्या है? तुम जानते हो कि दस्यु नौकायें तीव्रगामिनी हैं और दस्यु संख्यामें भी अधिक हैं!'

'लाला राजपूत न संख्या देखता और न साधन!' सुवीरका कण्ठ बज्रघोष कर रहा था। 'एक केशरी शावक सहस्रों शृगालोंके लिए पर्याप्त है। शरीरमें प्राण रहते दस्यु राजहंसपर पद नहीं रख सकेंगे!'

'श्लाघ्य है तुम्हारी शूरता।' शिल्पी अनुद्विग्न था। 'किन्तु हम युद्ध करने नहीं चले हैं। हमें चलना है। तुम नाविकोंको मान अग्रसर करनेका आदेश दो! शेष सब चुपचाप देखो!' स्वर दृढ़ एवं आदेशपूर्ण था। अध्यक्षने मस्तक झुकाया। खड्ग अपने कोशमें चला गया। नाविकोंने शस्त्र रख दिये और पतवार सम्हाल ली।

'ओह सोमकेतु! खुदाकी मेहरबानी। हम लोग तुम्हें कोई तकलीफ नहीं देंगे!' दस्युओंका क्रूर सरदार महाशिल्पीके सम्मुख दैत्यके समान लगता था। उसके रक्तवर्णी श्मश्रु ऐसा जान पड़ते थे जैसे वह सचमुच रक्तपाणि पिशाचके हृदयको व्यक्त करते हों। राजहंस-को दस्युनौकाओंने घेर लिया। दस्युओने बहुत कम

गोलियाँ चलाई । उनसे कोई आहत नहीं हुआ । पोतसे प्रतिकार न होते देख वे समीप आ गये। शिल्पी स्वयं आदेश दे रहा था। दस्युओंके आदेशानुसार अवरोहणिका उतारी गयी। सशस्त्र दस्यु ऊपर आये। पोतके समस्त सैनिक एवं नाविक बन्दी हो गये। दस्यु सरदार बड़ा प्रसन्न था। शिल्पी सोमकेतुकी कीर्ति वह सुन चुका था। तुम हमारे बादशाहके लिए हरम खास बना सकोगे और उसके बाद बादशाह तुम्हें आजाद कर देंगे।'

'सोमकेतु केवल भगवान् शशांकशेखरके लिए ही टांकीका स्पर्श करता है।' शिल्पीका स्वर अविकम्प था।

'हम फिर गौर करेंगे!' दस्यु शीघ्रतामें थे। उन्हें पोतको लूटना था और खुले समुद्रसे यथा सम्भव शीघ्र भाग जाना था। उन्होंने पोतके समस्त लोगोंको पोतके एक कक्षमें बन्द कर दिया। दो दस्यु द्वारपर नियुक्त हो गये और बाकी लूटपाटमें लगे।

'सोमकेतु, तुम मेरे हमराह आओ! लगभग दो घड़ी पश्चात् द्वार खुला और दस्युपति कक्षमें आया। उसके साथ केवल एक अङ्ग रक्षक था। वह बहुत चंचल जान पड़ता था।

'मैं अपने साथियोंको छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा!' शिल्पी अपने स्थानपर शान्त बैठा रहा।

'तुम नाहक जान देते हो। दरियामें तूफान है। तुम देखते नहीं हो कि यह पोत कितना हिल रहा है।' दस्युपति स्वरको यथा सम्भव मधुर करके बोला 'हम

तुम्हारी इज्जत करेंगे। तुम्हें दौलत देंगे और तुम अपने मुल्कको लौटनेके लिए आजाद कर दिये जाओगे।'

'मैं बालक नहीं हूँ!' शिल्पी हँसा 'तुम मुझे लोभ नहीं दे सकते!' वह किस प्रकार बैठ गया जैसे दस्युपतिसे आगे बोलना भी उसे अपमान कारक लगता हो।

'मैं मजदूर हूँ। इन सब काफिरोंके साथ तुम भी जहन्नुम जाओ!' क्रोधसे ओष्ठ काटता वह लौट पड़ा। द्वार बन्द हो गया।

दस्युओंने देख लिया था कि वायुका वेग बढ़ता जा रहा है। समुद्र अपनी उत्तुंग लहरोंसे प्रलयंकर स्वरूप धारण करता जा रहा है। छोटी नौकायें और अधिक देर यहाँ रुकीं तो उन्हें जल समाधि लेनी होगी! एक-एक क्षण मूल्यवान हो गया था। इतने बड़े पोतको साथ ले जाना शीघ्रतापूर्वक सम्भव नहीं था। उसे छोड़ देनेसे भय था कि वह पीछा करे। अतः पोतको डुबोकर भाग जानेका उन्हें निश्चय करना पड़ा। दस्युपतिको अपनी भूलपर पश्चाताप हुआ जो शिल्पीको सबके साथ बन्दी करके उसनेकी थी। अब इतना अवसर नहीं था कि बलात् शिल्पीको लाया जा सके। इसमें संघर्ष अनिवार्य था और अब एक-एक क्षण मूल्यवान था। पोतकी तलीसे एक काष्ठ हटाकर दस्युओंने अपनी नौकायें दौड़ा दीं। पोतकी समस्त सामग्री वे लूट चुके थे।

'सुवीर; बाहर कोई गति नहीं जान पड़ती!' शिल्पीने कहा 'क्या द्वार टूट सकेगा?' अविलम्ब कक्षद्वारपर प्रहार होने लगे। वह टूट गया। सबने बाहर

आकर देखा कि दस्यु-नौकाओंका पता नहीं है। समुद्रमें प्रचण्ड तूफान है। सुवीरने शीघ्रतापूर्वक पोतका निरीक्षण प्रारम्भ किया। तलदेश आधा जलसे पूर्ण हो चुका था। इतने पर भी सन्तोषकी बात थी कि जल अब बढ़ नहीं रहा था! जल निकालनेकी अपेक्षा इस अन्धड़में पोत ले चलना अधिक श्रेष्ठ था। नाविकोंने पतवारें सम्हाल लीं।

× × ×

'महाशिल्पी…। महाराज कहते-कहते स्वयं ही रुक गये। तीरपर दूर दर्शक लिए अप्रमत्त निरीक्षक प्रात:से ही नियुक्त थे और अबतक महाशिल्पीके पोतका कहीं पता नहीं था। जो भी चर आते थे, वे नकारात्मक सूचना ही देते थे। महाराजने आगत चरकी मुद्रासे ही समझ लिया कि वह भी वही 'पता नहीं' कहेगा।

'मुहूर्तके समयको केवल एक मुहूर्त और अवशेष है।' आचार्यने खिन्नता पूर्वक बताया। वे बार-बार जल-घटिका यन्त्रकी ओर देख रहे थे।

'महाशिल्पीको साधारणत: कल आ जाना चाहिए था। उन्होंने मेरा अनुरोध स्वीकार कर लिया था और अब तक स्वीकार करके अनुपस्थित होनेका प्रमाद उन्हें स्पर्श नहीं कर सका है।' महाराजका मन अनेक आशंकाओंसे आक्रान्त था।

'नियतिके अज्ञात करोंकी क्रीड़ा कौन समझ सकता है।' आचार्य जैसे अपने आपसे कह रहे हों। वास्तु पूजन

एवं नवग्रह पूजन हो चुका था कभीका। भगवान गण-नाथने कार्य निर्विघ्नताके लिए अग्रिम पूजा प्राप्त करली थी। कर्मान्त तकके लिए स्थापित प्रदीप निष्कम्प था। यज्ञकुण्डमें हव्यवाह उर्ध्वमुख प्रज्वलित होकर आहुतियाँ स्वीकार कर रहे थे। ऐसी दशामें यह महाविघ्न क्यों उपस्थित हो रहा है, यह समझना आचार्यके लिए अत्यन्त कठिन था।

'मुहूर्त तो महाशिल्पीके करोंसे ही होगा।' महाराज-ने अपना निश्चय प्रकट कर दिया। आप यज्ञको पूर्ण करलें। यदि पूर्णाहुति तक भी वे न पधारे तो हम सागर-में अवभृत स्नान कर लेंगे।' मन्त्रोच्चारण हो रहा था। आहुतियाँ पड़ रही थीं। सुगन्धित धूम्र अनन्तमें कुण्डलियाँ भी बना रहा था। शङ्ख तथा विजय-घण्ट भी ध्वनित होते थे, पर जैसे इतनेपर भी वह स्थान जनहीन हो। निस्पन्द उदासीनता सबको आत्मसात् किये व्याप्त थी।

'आप पूर्णाहुति दें!' समय हो गया। आचार्यने महाराजके करोंमें घृताक्त नारिकेल दिया और स्वयं होताने हव्यवाहमें घृतकी धारा छोड़नी प्रारम्भ की। नारिकेलकी आहुति देकर सबने भूमिपर मस्तक रखा।

'जय महाकाल!' एक क्षीण कण्ठ ध्वनिके साथ कुछ पुष्टपर श्रान्त कण्ठध्वनियोंने प्रतिध्वनि-सी की। जैसे साक्षात् यज्ञ पुरुष कह उठे हों 'वरं ब्रूहि' महाराजमें जैसे नवीन प्राण आ गये हों। वे सहसा उठे। समुद्रके क्षार जलसे आपाद मस्तक आर्द्रशिल्पी भूमिमें रखे यज्ञदेवको अभिवादन कर रहे थे और उनके पीछे वैसे ही

आर्द्र व्यक्ति थे। झपटकर महाराजने शिल्पीको उठाकर कण्ठसे लगा लिया। यज्ञपरिषदमें जैसे जीवनका संचार होगया हो।

'सुवीर कहते हैं कि दस्यु पोतसे एक काष्ठ हटा गये थे। जलके साथ कोई महामीन पोत तलमें प्रविष्ट हो गया किसी प्रकार और उसके शरीरसे छिद्र अवरुद्ध हो गया। जब पोत उथले तटमें प्रविष्ट हुआ तो मीनराजको जलका घनत्व कम अनुभव हुआ और वे बाहर निकल गये। हमारा पोत डूब गया।' महाशिल्पीने मार्गवृत्त सुनाते हुए बताया। 'मेरा विश्वास है कि स्वयं महाकालके इंगितसे तबतक वरुण पोतमें नहीं पधारे जबतक पोत इस स्थितिमें न आ गया, जहाँसे संतरण करके हम तट तक पहुँच सकते।'

× × ×

लोग उस कलापूर्ण मन्दिरको एलिफेन्टा कहते हैं। सम्पूर्ण पर्वतको काटकर मूर्तियाँ, स्तम्भ, तोरण, द्वार, प्रकोष्ठ प्रांगण सब एक ही पर्वतमें बने हैं। न कहीं जोड़ है और न प्रमाद या उपेक्षा। महाशिल्पीकी निष्ठा कालके ऊपर भी विजयिना होकर आसीन है वहाँ इस देशमें।

महाराजका नाम हम भूल गये। विश्व न तो उन्हें जानता और न जाननेकी इच्छा करता, किन्तु महाशिल्पी सोमकेतु अमर हैं। अमर है उनकी कीर्ति। उस अपार जल-राशिमें स्थित उपत्यकाके तटोंपर अपने

विशालतरंग करोंसे ताल देते वरुण देव निरन्तर महाशिल्पीका जयघोष किया करते हैं।

मोहमयी (बम्बई) से कुछ दूर समुद्रमें अनेक पहाड़ियाँ हैं। एक उनमेंसे ही पहाड़ीपर सोमकेतुकी अमर शिल्पकला प्रतिष्ठित है। सुविशाल प्रांगण और विस्तृत सभाभवन। भवनके सम्पूर्ण स्तम्भमें भगवान शंकरकी मूर्तियाँ हैं। खूब सघन कला व्यक्त हुई है और महाशिल्पीने उस क्षारोदधिके मध्यमें मन्दिर प्रांगणमें सुमधुर निर्मल जलकी वापी पता नहीं कैसे स्थित की है।

---

# असुर उपासक

'वत्स, आज हम अपने एक अद्भुत भक्तका साक्षात्कार करेंगे।' श्री विदेह-नन्दिनीका जबसे किसी कौणपने अपहरण किया, प्रभु प्रायः विक्षिप्त-सी अवस्थाका नाट्य करते रहे हैं। उनके कमलदलायत लोचनोंसे मुक्ताकी झड़ी विराम करना जानती ही नहीं थी। आज कई दिनोंपर—ऐसे कई दिनोंपर जो सौमित्रके लिए कल्पसे भी बड़े प्रतीत हुए थे, प्रभु प्रकृतस्थ होकर बोल रहे थे 'सावधान, तुम बहुत शीघ्र उत्तेजित हो उठते हो! कहीं कोई अनर्थ न कर बैठना! शान्त रहना! प्रत्येक परिस्थितिमें शान्त!'

'कौन है वह भाग्यशाली? किस महाभावुकके भावने श्री मैथिलीके वियोगपर भी विजय प्राप्तकी है?' लक्ष्मण तनिक पास खिसक आये थे। आज्ञा तो उन्होंने चुपचाप मस्तक झुकाकर सुन ली; पर उनके हृदयमें खलबली हो उठी 'मैं किसी भावुकके सम्मुख क्यों उत्तेजित होने लगा। यह 'प्रत्येक परिस्थिति' क्या है? लक्षण तो अच्छे नहीं जान पड़ते।'

बीहड़ पथ, सघन बनावली, दोनों ओर कटीली लतायें, बड़े-बड़े पत्थर पथमें कहीं-कहीं नाले पड़ते थे और कहीं कठिन चढ़ाई या सीधी ढालपर उतरना था। किसलय कोमल श्री चरण-रामानुजकी दृष्टि उन लाल-लाल चरणोंपर ही लगी थी। प्रत्येक पदपर उनका हृदय दहल उठता था। ठोकर न लगे! कोई कंटक या कुश

चुभ न जाय !' वे चरण चिह्नोंको बचाकर पैर रखते थे और नाले या चढ़ाईमें आगे हो जाते थे।

सम्भवत: धरित्रीको अपने स्वामीके चरणोंकी कोमलताका ध्यान था। पथके दोनों ओरके पारिजात पादपोंने पथपर अपने कुसुमोंका पांवड़ा बिछा दिया था। आकाशमें धुनी रुईके समान हल्के-हल्के श्वेत बादल पंख फैलाये थे भगवान् भास्कर अपने कुल भास्करके अतुल ऐश्वर्यको देख उनके पीछेसे ही मन्द-मन्द हास्य कर रहे थे।

श्री राघव किसी निश्चित गन्तव्यपर पहुँचनेकी शीघ्रतामें थे। चरणों की गति चंचल हो उठी थी। नीला मुख-मण्डल स्वेद कणोंको लेकर ओस बिन्दुओंसे युक्त इन्दीवरकी श्रीका उपहास करने लगा था। वल्कल बारम्बार स्कन्धसे खिसक जाता और वामकर उसे स्थानपर प्रतिष्ठित कर देता। मलय मारुतने पुष्प परागसे जटा जालको पीताम कर दिया था और कण्ठ-माल्यके सुमन द्विगुणित परागपूरित हो जाते थे।

'प्रभु परिश्रान्त हो गये हैं।' वृक्षोंपर बैठे विहंग मार्गके दोनों ओर शान्त खड़ी मृग माला फल-भारसे प्रणाम करतेसे अवनत पादय, मानों सभी नेत्रोंमें अपार आग्रह भरकर कहते हों—'दो क्षण विराम करलें !'

प्रभुका ध्यान कहीं और ही था। नहीं देखा उन्होंने यशोगान करती भृङ्गावलीकी ओर, दृष्टि नहीं गयी सूण्डमें पुष्पित डाल लेकर चंवर करते वनगजों के यूथ-पतिपर और ध्यान नहीं दिया नेत्र मटकाते, हाथोंमें

सुपक्व फल लेकर प्रदानको समुत्सुक चंचल कपिसमूह-पर। संकेतसे ही सौमित्रने सबको सत्कारपूर्वक वारित कर दिया।

'तीन वर्ष—आज पूरे तीन वर्षसे वह महाप्राण मेरी प्रतीक्षा कर रहा है।' प्रभूने जैसे अपने आपसे ही कहा हो—'न प्यास, न भूख, न स्नान, न शयन, वह कहीं हटता भी नहीं। उसे अपने शरीरमें लगे दीयकको छुड़ाने तकका अवकाश नहीं। कहीं ध्यान हटे और मैं आगे निकल जाऊँ इसी चिन्ताने उसे योगिराज बना दिया है। अपलक देखता रहा है पथकी ओर।'

कई बार मनमें आया कि उस महाभागका परिचय पूछा जावे। प्रभु किसीके चिन्तनमें निमग्न थे। उचित नहीं समझा सौमित्रने स्वामीका रुख पाये बिना उनसे कुछ पूछना। पूछनेका अवसर नहीं था। अन्तरके कुतुहलको उन्होंने शान्त कर दिया 'अभी आज ही तो उसका साक्षात होना है।' दिन ढल चुका था और निश्चित था कि आज अमावस्याकी रात्रिमें प्रभु आगे नहीं चलेंगे।

× × ×

'वह बड़ा दुष्ट है।' एक कज्ज-लवर्ण, अरुण नेत्र, रूक्ष गैरिक केश, पर्वताकाय राक्षस अपने शाल जैसे बड़े हाथोंमें पूरा पहाड़ उठाये खड़ा था मार्गमें उसने एक ओर से सभी राक्षसोंको मार डालनेका निश्चय किया है। खूब ठोस है यह पर्वत!' उलट-पुलट कर उसने

पर्वतको इस प्रकार देखा जैसे हमआप ईंटको देख लेते हैं।

'उसके बाण तीक्ष्ण हो सकते हैं।' उसने अट्टहास किया 'इस पर्वतमें दरारें नहीं पड़ सकतीं। इसे टुकड़ोंमें नहीं उड़ाया जा सकता। तिल-तिल काटनेपर ही कटेगा यह। इतनेमें तो सिरपर गिर पड़ेगा। पूरे बलसे फेंकूँगा मैं!' उसने कन्दुककी भांति पर्वतको उछाला और झेल लिया।

'उहूँ, यह चिकना है।' एक ओर उपेक्षासे रख दिया उसे 'तब शाल्मली ठीक रहेगा। उसमें एक-एक अंगुलीसे भी कम दूरी पर कांटे होते हैं। सब कांटे होते हैं। सब काँटे चुभ जाएँगे। सारा रक्त बह जायेगा।' खूब हा, हा, करके हँसता रहा वह कितनी देर।

'काष्ट ही तो है।' शाल्मलीका वृक्ष भी फेंक दिया उसने। 'बाण लगे तो टुकड़े-टुकड़े हो जायगा। कन्टकित मुग्दर उपयुक्त अस्त्र है।' मुग्दर लेने दौड़ गया वह खर-दूषणके पास। कुलमें एक मुहूर्त बीता और वह लौट भी आया। ढेरों अस्त्र-शस्त्र लाया था अपने साथ।

अनेक प्रकारके वृक्ष, छोटे बड़े गिरि शिखर, भयंकर पशुओंकी अस्थियाँ, विषैली चट्टानें, हथियारोंका पूरा बाजार। इस प्रकार दक्षिण पथ उसने अवरुद्ध कर दिया था। अपने चारों ओर इन सबका ढेर लगा कर वह स्वयं मार्ग में खड़ा था।

'श्री राम दूसरे पथसे भी जा सकते हैं।' कल्पना तक नहीं उठी उसके मनमें। वह उनका इधर होकर आना

वैसे ही निश्चित माने बैठा था, जैसे पूर्वमें सूर्योदय। प्रात: से प्रात: तक वह प्रतीक्षा करता था राघवकी और अपने आघात साधनोंकी समालोचना।

'बहुत बड़ा होगा वह। सम्भवत: इस पहाड़से भी बड़ा !' उसके सम्मुख श्री रामकी अनेक कल्पित मूर्तियाँ आया करतीं थीं 'उहँ, होने दो ! मैं आकाशमें उड़ जाऊँगा और उसके मस्तक पर पहाड़ पटक दूँगा।'

'बहुत मोटा हो सकता है। हाथीसे पचास या सौ गुना मोटा।' दूसरी मूर्ति सम्मुख आयी 'पहाड़ क्या करेगा उसका। उसके मोटे शरीरपर एक कंकड़ जैसा लगा तो। मैं मुदगरसे मारूँगा। शिलाकी भाँति पड़ाकसे जायगा।'

'बहुत कड़ा होगा उसका शरीर। वज्र जैसा कड़ा।' यह मूर्ति अत्यन्त भयंकर थी 'मुदगर तो खटसे टूट जायगा। विषैली शिला ठीक रहेगी। तनिक भी रक्त आया नहीं कि बिष प्रविष्ट हो जायगा। खरोंच भी आ गयी तो बेड़ा पार।'

'बाण-विद्यामें अत्यन्त कुशल होगा। मेघनादसे भी कुशल।' उसका आदर्श रावण पुत्र ही हो सकता था। 'मेरी शिलाको बाणोंसे मध्य ही में रेत बनाकर उड़ा देगा।' कल्पना ठप्प हो जाती।

'क्या आवश्यक है कि वह बड़ा मोटा और कठोर ही हो।' मन पराजय मानना नहीं जानता। वह दूसरी प्रकारसे तर्क करता 'मानव ही तो है, कुशल धनुर्धर होगा। हो सकता है कि अच्छा मल्ल भी हो। नहीं-- मल्ल

तो नहीं हो सकता। राजकुमार है और सो भी अयोध्या-का। अयोध्यामें कभी मल्ल-नरेश नहीं सुना है। अवश्य बाण विद्यामें कुशल होगा, होने दो! दोनों हाथोंमें पकड़कर मसल दूँगा।' अपनी हथेलियाँ परस्पर मसल लेता है वह।

अन्ततः उसने श्री रामकी एक मूर्ति मनमें गढ़ ली। उसके साथ बराबर वह हृदयमें युद्ध करता, उसे मसलता और नष्ट करता। बड़ी विचित्र थी वह मूर्ति—बार-बार नष्ट करनेपर भी जीवित रहती थी 'कहीं राम भी तो ऐसा ही मायावी नहीं है?' चौंक उठता था कभी-कभी स्वयं।

× × ×

'कौन हो तुम?' नवदूर्वादल श्यामल जटा मुकुट-धारी, वल्कल पहने, कन्धेपर धनुष लिए, पीठपर तूण कसे, एक अद्‍भुत मानव सामने आ गया। उसके पीछे उसका समानवेशीय एक स्वर्णगौर और भी था। एकदम सामने आकर खड़े होनेपर उसका ध्यान भंग हुआ था। 'भाग जाओ!' राक्षस किसी दूसरेसे उलझना नहीं चाहता था।

'जिसकी तुम प्रतीक्षा कर रहे हो!' मेघगम्भीर वाणीमें मंद हास्य था 'मैं दाशरथि राम हूँ।' वे स्थिर खड़े रहे।

रामानुज इस राक्षसको देखकर ही चौंके थे। उनके मनमें आया था 'एक बाण चढ़ाकर झगड़ा समाप्त कर दें।' उस समय उन्हें बड़ा क्रोध आया जब राक्षस प्रभुका

तिरस्कार करके अट्टहास करने लगा। करें क्या ? आज्ञा नहीं थी।

'तुम्हीं राम हो ?' भरपेट हँसकर उसने पूछा— 'नहीं राम तो बड़ा पुष्ट है। बड़ा बलवान है। बड़ा कुशल धनुर्धर है। तुम छुईसे कोमल, मेरी छोटी उँगलीसे पतले-दुबले मेरे घुटनेसे भी छोटे ! तुम राम नहीं हो सकते। मुझे चिढ़ाओ मत ! अपना रास्ता लो।'

'रामके मनको कभी असत्य स्पर्श नहीं करता !' उसके हास्यपर प्रभु भी मुस्करा रहे थे—'तुम्हें धोखा नहीं हुआ है दुर्दम्य।'

'ओह ! तब तुम्हीं राम हो !' उसके स्वरमें निश्चयके साथ आश्चर्य भी था। 'तुम मुझे पहिचानते भी हो।' घूमकर एक विषैली शिला उठाई उसने।

रामानुजका दक्षिण कर धनुषपर पहुँच गया। प्रभुने पीछे देखा और संकेतसे भाईको वारित कर दिया। विवशता हाथ हट गया किन्तु अधर फड़कते रहे। नेत्रोंमें अरुणिमा आ गई थी—'यदि इसने आघात किया प्रभुपर' वे निश्चयपर पहुँच गये—'भाड़में जाय मर्यादा ! मेरे सहस्र फण आधे क्षणमें प्रकट हो जायँगे। मैं शिलाके साथ इसे निगल लूँगा !' जगदाधार क्या नहीं कर सकते ?'

'मैं तुम्हें पीसकर रख दूँगा !' चिल्लाया वह— 'पर तुम डरते क्यों नहीं ? तुम तो धनुष कन्धेपरसे भी नहीं उतारते हो ! इस प्रकार हँस क्यों रहे हो ? तुम्हें भय नहीं लगता ?' उसका दाहिना हाथ शिला उठाये था। विस्मयने उसे स्तब्ध कर दिया था।

'मैं सज्जनोंके भयको दूर करता हूँ और दुष्टोंको भय देता हूँ।' प्रभुकी वाणी तनिक गम्भीर थी—'मुझे भयकी छाया भी कभी नहीं छूती।

'इन्द्र महा डरपोक है। विष्णु भी हिरण्य-कशिपुके डरसे भागा-भागा फिरा था। शिवको भस्मासुरने भीत कर दिया था और बूढ़े ब्रह्माको त्रिशूल लेकर। शिवसे रावण डरता है, नहीं तो समुद्रमें राजधानी न बनाता। मेघनाद भी डरता है मैं उसकी अमोघ शक्ति छीनने झपटा तो गिड़गिड़ाने लगा। मैं भी डरता हूँ मृत्युसे मुझे भी भय लगता है।' वह बोलता जा रहा था—'तुम डरते नहीं! सचमुच तुम डरते नहीं! तब तुम ब्रह्मादिसे, रावणसे, मेघनादसे, मुझसे—मुझसे भी बड़े हो!' राक्षस अपनेको सर्वश्रेष्ठ मानेगा ही।

प्रभु शान्त खड़े थे। उनका मन्द हास्य आनन्दकी वृष्टिकर रहा था। रामानुज विस्मित थे। असुरका हृदय द्वेष-वश सदा- 'श्री राम, राम,' की ही अब तक रट लगाये रहा था शुद्ध तो वह हो ही चुका था साक्षात्कारने आसुरी भावके आवरणपर आघात किया। वह चूर-चूर हो गया।

'तुम बड़े हो-मुझसे भी बड़े हो! ऊपरसे नीचेतक देखा उसने श्री विग्रहको। शिला कबतक हाथसे छूटकर पीछे गिर पड़ी, उसे पता भी न लगा—'तुम बहुत सुन्दर हो। बड़े अच्छे हो, बड़े अच्छे हो तुम! वह वहीं मार्गमें बैठ गया।

'वर माँग लो!' प्रभुने सम्पूर्ण गम्भीरतासे कहा—

'मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम जो माँगों मिलेगा ! रामानुज-को यह उदारता अच्छी नहीं लगी।

'तुम दे सकते हो! तुम सबसे बड़े जो हो!' राक्षसके स्वरमें तनिक भी अविश्वास नहीं था—'मुझे वट-पीपल कुछ भी नहीं चाहिए ! इच्छा करते ही ब्रह्मा, विष्णु या शिवको मैं पहाड़की गुफामें बन्द कर सकता हूँ। मुझे उनके स्थानके साथ उनके कामका बखेड़ा नहीं लेना है। रावण मेरी दयासे लंकामें बना है। क्या दोगे तुम मुझे ?' वह विरोचनका दौहित्र अपने सम्बन्धमें अतिशयोक्ति नहीं कर रहा था। वह स्रष्टाकी सृष्टि एवं शिव तथा ब्रह्मासे अवध्यताका वरदान प्राप्त कर चुका था ! विष्णुने उसके पितामहके पिता प्रह्लादको आश्वस्त ही कर दिया था—'मैं तुम्हारे वंशजोंका वध नहीं करूँगा !'

सौमित्र-जगद्गुरु सौमित असुरकी निरपेक्षतासे द्रवित हो गये। अधिकारीका अनादर उनके पावन पदोंमें कभी हुआ नहीं है। भरे दृगोंसे उन्होंने अग्रजकी ओर देखा। प्रभुका ध्यान उधर नहीं था। वे भक्तवत्सल भावक्रीत हो चुके थे अनुरोधके पूर्व ही।

'तुम बड़े सुकुमार हो !' वह श्रीचरणोंके समीप बैठ गया—'वनमें काँटे, कंकड़, साँप-बिच्छू, नदी-नाले, शेर-व्याघ्र, पता नहीं कितनी आपत्तियाँ हैं। लू तुम्हें तपा देगी और वर्षा भिगो देगी। पता नहीं कितने राक्षस मेरी भाँति वृक्ष-पर्वत एकत्र किये तुम्हें मारने बैठे होंगे। मैं खूब मधुर फल ला दिया करूँगा।

शशक तथा कोमल माँसवाले मृग शावक भी। यहाँ पर्याप्त मधु छत्ते हैं। निकट ही शीतल झरनेके समीप तुम निवास करो। बड़ी सुन्दर गुफा है।'

'हम रुकना तो चाहते नहीं' प्रभुने समझाया 'तुम्हें साथ ले चलना भी उचित प्रतीत नहीं होता।'

तुम रुकना नहीं चाहते? तुम्हारी इच्छा नहीं है?' असुरका स्वर शान्त था—'मैं रोकूँगा नहीं? साथ चलनेका आग्रह भी नहीं करूँगा। तुम्हारी इच्छामें बाधा डालकर तुम्हें कष्ट न दूँगा। तुम जाओ। बड़े अच्छे हो तुम। मैं तुम्हें ही सोचता रहूँगा।' नेत्र बन्द कर लिए उसने।

प्रभुके नेत्र भी क्षण भरको बन्द हुये। दो बिन्दु उस राक्षसके मस्तक परसे गिरे। अनुजके मुखकी ओर देखा उन्होंने और आगे चल पड़े।

'उसकी धारणा ध्यानमें परिपक्व हो गयी और अनवच्छिन्न ध्यान समाधिमें।' अनुजको अग्रज समझा रहे थे। अपने अनुरागमें वह पूर्ण हो गया। उसके शरीर-स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर, कबतक प्रकृति चला सकेगी इसे। वह तटस्थ हो गया सर्वदाको। यह भौतिक सम्भार केवल दस दिनका है। वह उत्थित होनेको नहीं बैठा है। शरीरादि बिखर जायेंगे और अब वह साकेतमें ही उत्थित होगा।'

'प्रभु अनधिकारीको भी देते हैं' रामानुजको यह अच्छा नहीं लगा था कि उस महानुभावके सम्मुख प्रभु यों ही चले—'वह कुछ नहीं लेता था तो भक्तिका

वरदान तो देना ही था।'

'वत्स, भिखारी है राघव!' प्रभु प्रेम-विभोर होकर मार्गमें ही खड़े हो गये 'उस प्रेमात्मासे वह स्वयं भी प्रेम प्राप्त करता है। क्या देगा वह उसे?' श्री विग्रह रोमांचित हो आया था और नयनाम्बु पृथ्वीकी रजको पावनतर करते जाते थे।

'कितना निरपेक्ष निकला वह असुर भी!' सौमित्र भी भाव-प्रवाहमें प्रवाहित हो चुके थे—'समीपताका आग्रह भी तो नहीं किया उसने।

'अनुराग निरपेक्ष ही होता है।' प्रभुने समझाया—'तुम अपने ही को ले लो। क्या सुख, कौन-सी अपेक्षा है तुम्हें अवधका ऐश्वर्य छोड़कर मेरे साथ वन-वन भटकनेमें। आवेग रुका नहीं। दोनों भुजाओंसे उस प्रेमघनने भाईको समेट लिया।

अपनी चर्चा आते ही रामानुज संकुचित हो गये थे। मस्तक झुक गया था। नेत्र पृथ्वीमें लगे थे और हृदय कह रहा था—प्रभु यह कभी-कभी असंगत प्रसंग ले बैठते हैं। किस गिनतीमें हूँ मैं।'

'प्रेमकी कोई अपेक्षा नहीं हुआ करती। भक्तिका न कोई साधन है और न साध्य। वह स्वयं साधन है और साध्य भी। अपने आपमें 'परिपूर्ण' प्रभुका स्वर गम्भीर हो गया था—'ब्रह्मा-पुत्र सनकादि एवं देवर्षि नारदका मत है कि वह (भक्ति) स्वयं फलस्वरूपा ही है।'

---

# सेवाका प्रभाव

'या खुदा, अब तो आगेको रास्ता भी नहीं है।' सवार घोड़ेसे कूद पड़ा। प्यासके मारे कण्ठ सूख रहा था। गौर मुख भी अरुण हो गया था। पसीनेंकी बूँदें नहीं थीं, प्रवाह था। उसके जरीके रेशमी वस्त्र गीले हो गये थे। ज्येष्ठकी प्रचण्ड दोपहरीमें जरी एवं आभूषणोंकी चमक नेत्रोंमें चकाचौंध उत्पन्न कर रही थी। वे उष्ण हो गये थे और कष्ट दे रहे थे। भाला उसने पेड़में टिकाया, तरकश एवं म्यान खोल दी। कवच जलने लगा था और उसे उतार देना आवश्यक हो गया था। केवल कुर्ता रहने दिया उसने शरीर पर। मुकुट भी संतप्त हो चुका था।

'पानी कहाँ मिले?' व्याकुल होकर इधर-उधर देखने लगा। बन सघन हो गया था। घोड़े पर चढ़कर आगे जानेको मार्ग था नहीं। कहीं भी पानीके लक्षण दिखाई नहीं पड़े। 'यहाँ बैठनेको ठिकानेकी छाया भी तो नहीं।' वह खैरके वनमें भटक चुका था। काँटोंसे भरी डालियाँ भूमि तक झुकी हुई थीं। सूखकर गिरी टहनियोंने पृथ्वीको बैठने योग्य भी नहीं रखा था। वहाँ फल या जलकी चर्चा ही व्यर्थ थी।

'एक पेड़ तो दिखाई पड़ा।' दूर पर अर्जुनके विशाल वृक्षको देखकर उसने लम्बी साँस खींची। किसी प्रकार तलवारसे टहनियाँ काटता वह उसकी ओर बढ़ चला। जिधरसे आया था, लौट सकता था, एक मृगके पीछे

बेतहाशा भागा आया था। पगडण्डी भूल सकती है। ठीक लौट भी सके तो व्यर्थ। बहुत दूर निकल आया है वह। अब उतनी दूर नहीं लौट सकेगा वह, बड़ी तीव्रतासे प्यास लगी है। घोड़ा पसीने-पसीने हो गया है। जोरसे हाँफ रहा है और मुखसे फेन निकाल रहा है। जहाँतक स्मरण है, मार्गमें कोई बस्ती भी तो नहीं पड़ी। न एक झोंपड़ी और न नन्हा गड्ढा ही।

वृक्षके समीप पहुँचकर बड़ा निराश हुआ। कटीली झाड़ियोंने तनेतक उसे घेर रखा था। 'पता नहीं कौन-सा अपराध किया है कि बैठनेकी छाया तक नसीब नहीं।' मार्गकी झाड़ियोंको छाँटनेमें छाले पड़ गये हाथमें। उसका सुकुमार शरीर सूचित कर रहा था कि उसे कभी कोई परिश्रम नहीं करना पड़ा।

'अब क्या हो?' निराश हो गया वह जीवनसे ही। हो सकता है, आस-पास कोई तालाब या झरना हो।' उसने वृक्षकी ओर देखा। कवच, धनुष, भाला, ढाल, तरकश, मुकुट तथा आभूषण वह पहिले ही छोड़ आया था। तलवार भूमिपर रख दी। जरीके कामदार जूते उतार दिये और पेड़पर चढ़ने लगा। दूर जहाँतक चढ़ना सम्भव था, चढ़ गया वह।

'कहीं कोई झरना नहीं।' चारों ओर बड़े गौरसे देख रहा था वह। 'हो भी तो इन कंटीली झाड़ियोंके भीतर कहीं छिपा होगा। पानीका कहीं नामोनिशान नहीं मिल रहा है।' बड़ा दुःखी हो गया।

'वहाँ क्या है?' थोड़ी दूरपर वह अधिक सघन,

कुछ ऊँचा, हरा झुरमुट दिखाई पड़ा। ध्यानसे देखने लगा वह उसी ओर।' वह खैरका कुञ्ज नहीं हो सकता। नीम, आम, शीशम या ऐसा ही कुछ। कई पेड़ हैं और वह बीचमें सूखा-सूखा सा क्या झलक रहा है? किसी झोपड़ीका छप्पर तो नहीं?'

कुछ भी निश्चय न कर सका। दूरीके कारण कुछ स्पष्ट नहीं हो रहा था। पेड़ वहाँ सघन थे। अन्तत: उतर आया वह—यदि झोपड़ी हुई—मनुष्य होगा। मनुष्य हुआ तो जल भी होगा ही। कुछ न हुआ तो? मर तो रहा ही हूँ पानी बिना। यहाँ न सही वहाँ।' उतर आया वह वृक्षसे नीचे। जूते पैरमें डाले, तलवार उठाई, घोड़ेकी बाग पकड़ी और वहीं झाड़ियाँ छांटकर मार्ग बनानेमें लग गया।

× × ×

'सब लोग आज अलग-अलग शिकार करेंगे।' शाहजादा सलीम पूरे दल-बलके साथ बघेलखण्डकी सीमा पर पड़े हैं। बंगालके विद्रोहका दमन करके लौटते समय प्रयागसे वे जंगलकी ओर मुड़ गये। शिकारका बड़ा शौक जो था उनको। शाही खेमेके चारों ओर फौजी खेमे खड़े हो गये। हाथी और घोड़ोंकी कतारें लग गयीं। तन्दूर जलने लगे। एक दिन सबेरे शिकारके लिए निकलने पर घोड़ेपर बैठे शाहजादाने अपने साथी सेनापतियोंको आदेश दिया।

'यहाँ चीते और तेंदुओंकी भरमार है।' सेनापति

बहरामखाँने बताया 'बड़े भयंकर रीछ और बाघ भी हैं। शाहजादाका अकेला जंगलमें जाना ठीक न होगा।'

'मैं डरपोक नहीं हूँ!' शाहजादेने अपमानका अनुभव किया। उसकी त्यौरियाँ चढ़ आयी—'मैं दिखा दूँगा कि मैं किसीसे भी अच्छा शिकारी हूँ। घोड़ेको थाप दी उसने। सधा जानवर खुशीसे हिनहिना उठा।

'मेरा मतलब ऐसा नहीं था।' बहरामखाँने मस्तक झुकाकर बड़ी नम्रतासे अर्ज की 'मैं शहजादेकी बहादुरीमें यकीन करता हूँ और उनकी शानके खिलाफ एक लफ्ज भी जवानसे निकालनेकी हिम्मत नहीं कर सकता। मैं सिर्फ यह कहना चाहता था कि इधरका जंगल बीहड़ है। दोनों तरकशोंके तीरोंसे ज्यादा भी जरूरी हो सकते हैं और हजूर जंगलके रास्तोंसे वाकिफ भी नहीं हैं। महज खादिमको साथ रहनेकी इजाजत.........।'

'कोई जरूरत नहीं।' शाहजादा तो शाहजादा ही ठहरा। प्रधान सेनापतिसे यों भी चिढ़ता था वह। बार-बार उसका मुँह लगना वह गँवारा नहीं कर सकता। 'मेरे पास खूब वजनी भाला है और तलवार भी। मैं महज तीरोंपर मुनसहर नहीं करता। कोई बच्चा नहीं हूँ कि रास्ता भूल जाऊँगा। अगर भूल भी जाऊँगा तो ढूँढ़ लूँगा। इतना बड़ा कैम्प कोई सुई तो है नहीं जो खो जायगा।'

बहरामखाँ अन्ततः मानी सेनापति थे। शाहजादेके

द्वारा उनका यह पहिला अपमान था, चुपचाप सह लिया। उन्हें उसकी मूर्खतापर क्रोधके बदले तरस आया फिर भी उन्होंने अधिक आग्रह करनेमें कोई लाभ नहीं, देखा।

'दोपहरमें जानवर पानी पीने जरूर निकलते हैं।' शाहजादा अपनी विज्ञता प्रकट करना चाहता था। 'जो पानीके किनारे रहेंगे, वे ज्यादे फायदेमें रहेंगे। मैं तो आज उन्हें ढूंढ़कर उनके घरमें ही शिकार करूँगा।' उसकी चिढ़ उसे आवश्यकतासे अधिक उत्तेजित कर चुकी थी।

'तब मैं शामको यहीं आपसे मिलूँगा।' बहराम खाँ इस झल्लाहटसे छुटकारा पाना चाहते थे। उन्होने घोड़ेकी लगाम उठाई और आदेशकी प्रतीक्षा करने लगे।

'शामको नहीं, अधिक-से-अधिक तीसरे पहर तक!' शाहजादा आज जैसे सेनापतिकी प्रत्येक बातका प्रतिकार करनेपर तुल गया था!' सबको तीसरे पहर तक लौट आना चाहिए। शिकार मिले या न मिले। यदि कोई जंगलमें भटक जाय तो उसे ढूँढ़नेका अवकाश रहना चाहिए। यदि आप तबतक न लौटे तो मैं ढूँढ़ने आपको निकल पड़ूंगा!' व्यङ्ग किया उसने।

यदि वह अन्तिम व्यङ्ग न करता तो अवश्य सेनापति उसकी बुद्धिमत्ताकी प्रशंसा करते। 'आपको कष्ट न करना पड़ेगा।' सेनापतिने अबकी बार घोड़ा बढ़ा दिया और अधिक अपमान सहना उनके वशमें नहीं था।

'अच्छा! हम लोग भी अलग-अलग रास्ता लें।'

शाहजादेने सबको आदेश दे दिया और किसीको सलामका उत्तर देनेकी उसने कोई चेष्टा नहीं की। उसका घोड़ा तीरकी भाँति छूटा और एक ओर दूर पेड़ोंकी आड़में बिलीन हो गया।

सबसे पहले सेनपति लौटे। ये दोपहर होते-होते अपने घोड़ेकी पीठपर एक पूरा छः फीटका बाघ लादे तम्बूमें आ धमके। आते ही उन्होंने अपने निजी सेवकोंको जंगल पता-ठिकाना बताकर भेज दिया। पूरे आधे दजन पशु मारे थे उन्होंने। बाघ तो भालेसे मारा गया था और उसे वे खुद ले आये थे। एक चीता, एक तेंदुआ एक रीछ और दो तीतल और उनके तीरोंके निशान बने थे। सेवकोंने खच्चर खोले और वे सब जानवर आ गये।

अबतक कई शिकारी लौट चुके थे। प्रायः सबको कुछ-न-कुछ मिला था। कुछ आलसियोंने खरगोश या मयूर पाकर ही सन्तोष कर लिया था। चीते, तेंदुये और रीछ भी कई थे। सबसे अधिक संख्या थी चीतल और हिरणों की। बाघ तो दूसरे किसीको नहीं मिल सका था।

तीसरे पहरतक सभी आ गये थे। एक बुड्ढे मियाँजी को कुछ नहीं मिला तो वे दो वन मुर्गियाँ ही कहींसे मार लाये थे। सेनापतिने अपने राजपूत सहायक रामसिंहके काले चीतेकी प्रशंसा की- बड़ा धूर्त पशु होता है।' उन्होने बताया।

'थोड़ी देर और रुकना चाहिए।' शाहजादेका पता नहीं था और तीसरा पहर बीत चुका था। लोग सेना-

पतिसे आग्रह कर रहे थे कि उनको ढूँढ़ना चाहिए। 'वे चिढ़ते थे ही सुबह, और चिढ़ जानेका डर है।' सेनापति पूरी प्रतीक्षा करना चाहते थे। कुछ रुष्ट भी थे वे शाहजादेसे और मन-ही-मन झल्ला रहे थे—'भोग भी लेने दो थोड़ा अपनी बुद्धिमानीका फल।'

बहुत देर हो गयी। दिन कुलमें दो घड़ी बाकी रह गया था। लू बन्द-सी हो चली थी। सबकी थकावट भी दूर हो गयी थी। शाहजादेको ढूँढ़ने वे सेनापतिके आदेशानुसार जंगलमें बिखर गये।

× × ×

वह एकाकी था। कन्द-मूल, फल तथा वन्य पशु उसके आहार थे, मृग-चर्म, लकड़ी, वनौषधि या चार प्रभृति जंगली फल लेकर वह सप्ताहमें एक दिन पास-के दस मील दूरवाले कस्बेमें बाजार लगनेपर जाता और वहाँसे नमक, मसाला, तेल या कपड़ा खरीद लाता। उस कस्बेके अतिरिक्त उसने कोई बाजार या नगर नहीं देखा था। उसे आवश्यकता भी नहीं थी। बड़ी जोरकी गर्मी थी। लू चलने लगी थी वह अपनी झोपड़ीका दरवाजा बन्द ही करने उठा था टटिया लगाकर। सामने नीमके नीचे हाथमें घोड़ेकी लगाम पकड़े एक घुड़सवार आ गया कहींसे। वह शेर और चीतोंसे खेलनेवाला जंगली भील काँप उठा। पता नहीं कौन-सी विपत्ति आनेवाली है। रेशमी वस्त्र, कानोंमें झलमलाते मणिकुण्डल, हाथमें नंगी तलवार।' उसने

सवारको बांधव नरेशका कोई बड़ा अधिकारी समझा।

भाग जाता वह, यदि उसे तनिक भी अवकाश मिलता। बीहड़ जंगलमें उसे कोई ढूँढ़ न पाता। कुटियामें छिपे रहनेका भी अवकाश नहीं था। सवारने उसे देख लिया था। कटिको पूरी झुकाकर, मस्तकको लगभग भूमिके समीपतक पहुँचाकर दोनों हाथोंसे काँपते-काँपते जुहार की उसने। इतना गोरा, तेजस्वी बहुमूल्य वेश-धारी पुरुष उसने पहिले ही देखा था। 'पता नहीं बान्धव पतिका मन्त्री है या सेनापति? युवराज तो है नहीं, क्योंकि मुकुट नहीं लगाये है।' वह सोच रहा था।

'पानी मिलेगा भाई!' सवारको झोपड़ी देखकर अपार हर्ष हुआ था। भील उसे जीवनदाताके समान ही दिखाई पड़ रहा था। कण्ठ सूख गया था। शब्द निकल नहीं रहे थे स्पष्ट—'बहुत प्यासा हूँ।'

'हुजूर विराज जावें।' भील झोपड़ीमें दौड़ गया। एक बड़ा-सा कच्चा बाघाम्बर उसने नीमके नीचे चबूतरे पर शीतल छायामें बिछा दिया। घोड़ेकी रास पकड़ ली स्वयं उसने। 'बहुत चलकर आये दीखते हैं। पसीनेसे शरीर डूब रहा है। तनिक सुस्ता लें। पानी लग जायगा अभी पीनेसे। इसे चूसें, प्यासकी तेजी मर जायगी।' कई उजली-उजली जड़ रख दिया एक चौड़े सागौनके हरे पत्ते पर।

श्रान्त-क्लान्त सवार उसी चर्म पर धम्मसे बैठ गया। बैठते ही लेट गया। तलवारसे टुकड़े बनाकर एक टुकड़ा जड़ उसने लेटे-लेटे ही मुखमें डाली। कुछ खट-मिट्ठी

मुखमें जाते ही उसने मुखको पानीसे भर दिया। सवारको ऐसा लगा कि 'जीवनमें ऐसा स्वादिष्ट पदार्थ कभी नहीं खाया है।'

'आप तनिक विश्राम कर लें।' भील कोई बात कहनेसे पूर्व झुककर सलाम करता था—'मैं झरनेसे ठण्डा पानी लाता हूँ। पास ही है। इसे भी पानी पिलाकर धोलाऊँगा। घोड़ेको एक जड़में बाँधकर कुटिया-में-से घड़ा ले आया। जीन खोलकर सवारके समीप चबूतरे पर रख दी और घोड़ेको लेकर चल पड़ा।

'पता नहीं उसका पास भी कितनी दूर है।' सवारकी प्यास जड़ीने कुछ कम अवश्य कर दी थी; किन्तु उसे असह्य प्रतीत हुई। उठकर झरना ढूँढ़ने जानेका उसमें साहस नहीं रहा था। बहुत थका हुआ था। वायुने अबतक पसीना सुखा दिया था।

कंधेपर बायें हाथसे उसने घड़ा पकड़ रखा था और दाहिनेमें घोड़ेकी लगाम थी। घोड़ा हिन-हिनाता हुआ आ रहा था। पानी पीकर उसने प्यास बुझा ली थी और भीलने उसे स्नान करा दिया था। वह ताजा हो गया था। आते ही घोड़ेको उसने छोड़ दिया। वह हरी-हरी घास चरनेमें लग गया।

'भाग कर जायगा भी कहाँ ?' नीमके चबूतरे पर जलका घड़ा रखते हुए उसने कहा—'भागा भी तो मैं पकड़ लाऊँगा।' कुटियामें-से एक भद्दा-सा लोटा पीतलका और एक किसी फलकी कड़ी खाली खोखली। लोटेको खूब रगड़कर मांज दिया उसने। पानी भरकर सवारके

समीप रख दिया।

'आप हाथ-पैर धोवें' यह कहना नहीं पड़ा। सवार लोटा भरनेसे पहिले ही बैठ गया। उसने कुल्ला किया, मुख धोया और भली प्रकार हाथ और पैर भी। पाजामेंको यथा-सम्भव ऊपर सरका दिया था उसने। आज ही उसने अनुभव किया था कि शीतल जलसे हाथ-पैर धोनेमें कितना आनन्द होता है।

'गरीब आदमी हुजूरकी क्या सेवा करेगा?' एक बड़े पत्तोपर कुछ कन्द-फल और कई मोटे-मोटे उज्ज्वल दलवाले फूल रखे थे। भीलने झोपड़ीमें-से लाकर सवारके सम्मुख उन्हें रख दिया। पत्ता खूब बड़ा था और सवारने देखा कि उसमें उसके दैनिक भोजनसे चौगुना सामान भरा है। पानी पी लिया था उसने जी भरकर। अब उसे बड़े जोरकी भूख लगी थी। भूख तो पहिले भी लगी होगी; किन्तु प्यासकी तीव्रताने उसे दबा दिया था। प्यासका कष्ट मिटते ही पता लगा कि पेटमें चूहे छलाँग भर रहे हैं। चुपचाप पत्ता सामने खिसका लिया उसने।

एक-से-एक स्वादिष्ट। कोई खूब मीठा, कोई खट्टमिठा, कोई मन्द एवं सुरुचिपूर्ण मधुर। कन्द, फूल और फलोंमें-से एकको भी नही पहचानता था वह। केवल कमलके हरे बीज भर उसकी पहचानके थे। आगरेमें भला उसे क्यों तो 'चार' मिली होगी और क्यों कभी तेंदू खाया होगा उसने। भील उसे प्रत्येक फल या कन्दके खानेकी विधि बतलाता जाता था।

'आप शिकार करने तो आये नहीं दीखते।' कुछ

नि:संकोच हो गया था भील। अन्ततः सवारने न तो उसे डांट बतायी थी और न रोब गाँठा था। उसका भय कम हो गया था। 'न कुत्ते संग हैं और न हांका करने-वाले। हथियार भी नहीं हैं। रास्ता भूल पड़े होंगे कहीं जाते हुए। मैं यहाँके सभी रास्तोंको जानता हूँ।'

'आया तो शिकार करने ही था और वह भी अकेला। हथियार जंगलमें कहीं छोड़ आया हूँ। बहुत भारी थे वे, सवारने भरपेट भोजन किया। पत्तेपर चार-छः कमल-ककड़ीके बीज भर रह गये—'रास्ता भूल गया एक हिरणके पीछे पड़कर। भरपूर दुर्गति हुई।' हाथ धोकर उसने फिर पानी पिया और उसी बाघके चमड़ेपर लेट रहा।

घोड़ेकी टापका शब्द हुआ। भयके मारे भील झोपड़ीमें घुस गया। वहीं एक सूराखसे उसने देखा कि तीन हथियारबन्द दढ़ियल मुसलमान सिपाही घोड़ेसे कूद रहे हैं। ऊँचे-तगड़े-दैत्याकार हैं वे। एकने कलगी लगाई है उसमें। 'तब क्या ये उसके अतिथिको पकड़ने आये हैं?' धनुष चढ़ा लिया उसने खूँटीसे उतारकर और विषैले बाणोंका तरकश समीप रख लिया।

'ओह! बहरामखाँ!' सवार खूब सो चुका था। घुड़सवारोंके खट्-खट् कूदनेके शब्दने उसे जगा दिया था। आगतोंने झुककर उसे सलाम किया। 'सचमुच, मैं जंगलमें भटक गया।' उठकर खड़ा हो गया वह। सेना-पतिसे मांगकर एक टुकड़ा भोजपत्र लिया उसने और एक रंगीन शलाका। कुछ लिखने लगा। बहरामखाँने

देख लिया कि वह बांधव पतिके नाम युवराजका पत्र है। इस भीलको आस-पासका पूरा जंगल जागीरमें दे देनेका आदेश है उसमें।

'खूब !' सेनापति हँसे—'वह जानता भी न होगा कि आप कौन हैं।' 'मैं भी तो नहीं जान सका कि जो स्वादिष्ट फल मैंने खाये, वे क्या हैं ?' शाहजादेने कहा सेवा या भक्तिका प्रभाव तो राजाके पास और भोजनमें ऐसा ही देखा जाता है।

---

# अनुगमन

'ठहरो !' जैसे किसीने बलात् पीछेसे खींच लिया हो। सचमुच दो पग पीछे हट गया अपने आप। मुख फेरकर पीछे देखना चाहा उसने इस प्रकार पुकारने-वालेको, जिसकी वाणीमें उसके समान कृतनिश्चयीको भी पीछे खींच लेनेकी शक्ति थी।

थोड़ी दूर शिखरकी ओर उस टेढ़े-मेढ़े घुमावदार पथसे चढ़कर आते उसने एक पुरुषको देख लिया। मुण्डित मस्तकपर तनिक-तनिक उग आये पके बालोंने चूना पोत दिया था। यही दशा नासिका और उसके समीपके कपालके कुछ भागोंको छोड़कर शेष मुखकी भी थी। कटिमें गैरिक कौपीनके अतिरिक्त शरीरपर दूसरा कोई वस्त्र नहीं था। खूब लम्बा शरीर था और वृद्धावस्था उसे न तो क्षीण कर सकी थी, न झुर्रियाँ डालनेमें ही समर्थ हो सकी थी।

निकट आनेपर उसने देखा कि उनके शरीरका रंग उनकी कौपीनकी ही भाँति रक्तिम है एवं उन महापुरुषके दीप्तिमान भव्य ललाटसे प्रकाशकी किरणें फूट रही हैं। उनके तेजपूर्ण विशाल नेत्रोंकी ओर देखना शक्य नहीं है। आगे बढ़कर उसने उनके कोमल चरणोंपर मस्तक रखा। सचमुच नंगे पैर पहाड़पर पूरे घूमनेपर भी उनके चरण किसी सम्राट्की भाँति लाल एवं कोमल थे।

'तुम आत्म-लाल' हत्या करना चाहते हो ? इतने डरपोक हो तुम ? छिः !' झिड़क दिया महापुरुषने।

नीचे अतल खड्ड था। एक उजाड़ ऊँची चोटीपर किनारे कुलमें दो पद पीछे वह खड़े थे। वहाँसे नीचे झुककर नीचे देखनेमें भी भय लगता था। नीचे गिरे तो हड्डी-पसलीका पता भी नहीं लगेगा। इसी चोटीसे कूदकर अपनी विषय भावनाओंसे परित्राण पाने वह आया था। कोई आकस्मिक बात न थी, उसने कई सप्ताह हृदय-मंथनके तुमुल संघर्षमें रहकर यह निश्चय किया था। 'हाय रे अभागे मानव ! मरना भी तेरे हाथमें नहीं। ठीक कूदनेके क्षणमें उसे पुकारकर रोक दिया गया था।

'तुम जानते हो कि मरकर परिस्थितियोंको बदला नहीं जा सकता।' महापुरुष उसके कन्धेपर अपना दाहिना हाथ रखकर कह रहे थे—'संकटोंको मृत्यु हटा नहीं पाता और न उससे कुछ प्राप्त ही होता है। उनसे डरकर जीवनसे भागना अत्यन्त घृणास्पद भीरुता है और तुम्हें यह भी जान लेना चाहिये कि समस्त दण्ड-विधान भीरुके लिए ही बनाये गये हैं। मैं तुम्हें इतना लज्जाहीन-कायर नहीं समझता, मार्तण्ड !'

'मैं ऊब गया हूँ। मेरा हृदय जलते-जलते असह्य पीड़ासे विदीर्ण हो गया है।' मार्तण्ड मिश्र हिचकियाँ लेने लगे थे। किसी भी प्रकार मैं अब यह सब सहन नहीं कर सकता। एक बार इससे परित्राण पानेका मैंने निश्चय कर लिया है।'

'तुम्हारा निश्चय श्लाघ्य है।' महापुरुष हँसे—'भोले बच्चे, जब गाय क्षुधा, पिपासा, हरे तृणोंके लोभ या बन्धनसे ऊबकर रस्सी तुड़ाकर भागती है तो

पुनः पकड़कर बाँध दी जाती है। उसका बन्धन और कठोर हो जाता है। लाठी और डण्डे घलुएमें मिलते हैं।'

यह पहेली उसकी समझमें नहीं आयी। मुख उठाकर उसने महापुरुषकी ओर जिज्ञासा-भरे नेत्रोंसे देखा।

'कामोंका नाश नहीं होता। प्रारब्ध प्राप्त भोगोंका परित्याग कोई अर्थ नहीं रखता।' महापुरुषकी वाचा गम्भीर हो गयी—'आत्म-हत्याके पश्चात् दूसरा जन्म निश्चित है। वह जीवन वहींसे प्रारम्भ होगा, जहाँसे तुमने इसे छोड़ा है। आत्म-हत्या पाप है, उसका दण्ड अपने कार्यक्षेत्रसे बिना नियमित अवकाशका अवसर आये ही भागनेका दण्ड और भी भोगना पड़ेगा।'

'ओह!' सिरपर दोनों हाथ रखकर घुटनोंके बल वह वहीं बैठ गया। दोनों घुटनोंके मध्यमें सिर करके सम्भवतः रोने लगा था। निस्सीम थी उसकी वेदना। ओर-छोर नहीं था उसकी पीड़ाका। उसे लगता था कि महासमुद्र चारों ओरसे गर्जन करता बढ़ा आ रहा है। दिशाओंमें ऊँची दावाग्निकी लपटें उसे निगलनेको बढ़ी आ रही हैं। आज संसारमें प्रलय होनेवाली है। कहीं बच नहीं सकता वह। 'गुरुदेव!' चिल्लाकर उसने महापुरुषके चरणोंपर मस्तक रख दिया।

'मेरे बच्चे!' महापुरुषके अमृत-स्पन्दी करोंने उसके मस्तकका स्पर्श किया। उनकी जीवन-सुधा-संचारिणी वाणीने श्रवणोंमें हिम उड़ेला। दोनों उनकी विशाल भुजाओंने उठाया—'तुम व्यर्थ अधीर हो रहे हो।

जीवन उसका है जो दृढ़तापूर्वक उसे अपनाता है। जो कठिनाइयोंके मस्तकपर अपने सुदृढ़ चरण रखकर खड़ा हो सकता है। जीवन अधीर एवं भीरुका नहीं है।'

'मैं यह कुछ भी नहीं जानता। जाननेकी इच्छा भी नहीं है।' अब भी उसके नेत्र सूखे नहीं थे। 'अपनी ओरसे तो मैं चोटीसे कूद चुका। मेरे और मेरे सारे संसारके लिए तो मैं मर गया। अब जो कुछ भी है, वह आपका रक्षण है। आपने उसे बचाया है। आप ही जानें कि आपके लिए उसका कोई उपयोग है भी या नहीं।' अतः आत्म-समर्पण कर दिया उसने।

× × ×

संध्या हो चुकी थी। अस्ताचलसे एक बार दिनपतिने जगतीको देखा और उनके विरागकी छाया सम्पूर्ण धरातलपर विस्तीर्ण हो गयी। सम्पूर्ण हिमाच्छादित गिरि-शिखर गैरिकवर्णी वीतरागी संन्यासीके वेषमें परिवर्तित हो गये। तरु-वीरुध एवं लताओंने भी उसी वर्णको अपना लिया। प्रत्येक शिला रँग गयी उस रङ्गमें। पक्षियोंने दिशाओंमें मन्त्रपाठ प्रारम्भ किया और इसी समय गगनसे उन दोनों व्यक्तियोंके मस्तकपर धुनी हुई रुईके समान भास्करकी किरणोंमें रंगी हिम इस प्रकार गिरने लगी, जैसे आकाशसे गेरुकी वर्षा हो रही हो।

'आज हिमपातका प्रथम दिन है।' महापुरुषने

संकेत किया नभकी ओर। 'संभव है, अधिक बर्फ गिरे।' उन्होंने संकेत किया और वह उनके पीछे पालतू हिरणकी भाँति चलने लगा। हिमपर उनके चरण-चिह्न स्पष्ट बनते जाते थे और नवीन हिम उन्हें आच्छादित करता जाता था। प्रकृति उनके चारु चरणोंके पवित्र चिह्नोंको जगतके नेत्रोंसे दूर हटाकर अपने हृदयमें अन्तर्हित कर लेना चाहती थी। वे चले जा रहे थे चुपचाप, शान्त पैर बढ़ाये।

× × ×

कभी वह पक्की चहारदीवारीसे घिरा किसीका प्रमोदोद्यान रहा होगा। ऊँचे आम्र वृक्षोंके नीचे कभी मयूर नृत्य करते रहे होंगे और मृग कुलाचें भरते होंगे। मध्यका कमरा कभी खूब सजा-सजाया रहा होगा और उससे लगी छोटी कोठरी निश्चय ही वस्तुओंसे भरी रही होगी।

चहारदीवारीका नाम रह गया कहीं-कहीं। उसका यह गलित अस्थि-पंजर अब केवल ठोकर लगकर सूचित कर पाता है कि वह किसी दिन अवरोधिका थी। वृक्षोंके नीचे कंटीली जंगली लताएँ पैर फैलाये अंगड़ाइयाँ लिया करती हैं और स्पष्ट मना करती हैं कि हमारे क्रीड़ा-क्षेत्रमें कोई आया तो नोच लिया जावेगा। छोटी कोठरी-की छत गिर गयी है। ईंट एवं चूने-गारेसे भर गया है उसका पेट। उसमें झींगुरोंने अपना संगीतालय स्थापित कर लिया है। गिलहरियाँ कभी-कभी नृत्य-गृह बना लेती हैं और वर्षामें मेंढक उसमें चैनसे टर्राते हैं। यदा-

कदा अहिराज उसका निरीक्षण करने पहुँच जाते हैं। उनके निम्न कर्मचारी कनखजूरे, वृश्चिक आदिका यह स्थायी शिविर जो ठहरा।

बीचका कमरा कुछ स्वच्छ है। छत वर्षामें झरना बनती है या नहीं, कह नहीं सकता। दीवारोंपर कहीं-कही कोई काली रेखा युगोंसे पोते धूमिल चूनेपर पहाड़ एवं झरनोंका मानचित्र अवश्य बन गयी है। कड़ियाँ मोर्चेसे लाल हो गयी हैं। बैठनेपर जहाँतक मनुष्यकी पीठ दीवारसे सटती है, सारा चूना सफाचट हो गया है। एक पक्का चबूतरा है सीमेंटका एक ओर, छः फीट लम्बा, तीन फीट चौड़ा। किसी भक्तने पीछे महात्माजीके आनेपर बनवा दिया होगा। वही सोने के समय पलङ्ग, अध्ययनकी कुर्सी, मेजें और उपदेशका व्यासपीठ बनता रहता है और सो भी बिना आकार-परिवर्तनके।

जलका एक घड़ा, दो-तीन मिट्टीके कसोरे, कटु तुम्बीके दो खोल कटोरे जैसे कटे, कुछ टाट, दो-तीन चटाइयाँ, थोड़ी-सी पुस्तकें और कोपीनके दो गैरिक टुकड़े। महापुरुषका संग्रहालय किसीके लिए आकर्षक नहीं था। अवश्य ही वह अपनी अल्पताके कारण आकर्षक बन गया था।

'मैं कुछ उपार्जन नहीं कर पाता। व्याकरण एवं दर्शनका आश्चर्य होकर भी बैठे-बैठे पेट भरा करता हूँ।' मार्तण्ड मिश्र चबूतरेके पास पृथ्वीपर बैठे एक चटाई डालकर। महापुरुष चबूतरेपर कटिको कुछ झुकाकर ध्यानपूर्वक उनकी बातें सुन रहे थे। 'नौकरीसे मुझे

घृणा है और सो भी मठाधीशोंकी नौकरीसे। उनकी नौकरीका अर्थ है उन्हें सब प्रकारसे परमात्मा सिद्ध करो और उनके उचितानुचित सभी कार्योंमें महानताकी व्याख्या ठोंक-पीटकर बैठाते जाओ। संस्कृत पाठशालाएँ सब उन्हींके हाथमें हैं, और जो कुछ स्वतन्त्र हैं, वे परम्परागत पण्डितोंके लिए हैं।' घृणाके साथ आकुलताके भाव थे उनके मुँहपर।

'पण्डिताई मुझे स्पष्ट ठगी जान पड़ती है।' कुछ रुककर कहने लगे वे—'जिन मुहूर्त एवं गणितोंपर अपना कोई विश्वास नहीं, उन्हींकी प्रशंसा और प्रचार। मैं न ज्योतिषका मर्मज्ञ हूँ और न कर्मकाण्डका; फिर भी घरके लोग चाहते हैं उल्टे सीधे पूजा-पाठ करा दिया करूँ, जैसे सब करते हैं; और पत्रसे पूछनेवालोंको कुछ बता दिया करूँ।'

'माताको रात-दिन विवाहकी धुन है।' विषय बदल गया है। 'भाभी रूखी रोटी देते समय भी कुछ-न-कुछ तीखी बात कहकर ही प्रसन्न होती हैं। भाई इस प्रकार मौन एवं दूर रहते हैं, जैसे मैं कोई छूतका रोगी होऊँ। मुझसे बोलने या मेरे समीप बैठनेसे वह रोग उन्हें न लग जावे।'

'मैंने सोचा था—भगवानकी महान कृपा है। विषय हैं नहीं, जो उलझावेंगे और सम्बन्धी ऐसे हैं, जिनमें मोह होनेसे रहा।' महात्माजी शान्त सुन रहे थे। 'रुचि तो पिताजीसे उत्तराधिकारके रूपमें प्राप्त हुई थी। प्रयत्न किया मैंने। खूब भटका, खूब पढ़ा और वह सब किया

जो मुझसे हो सकता था। मेरा अन्तर्जगत बाह्यसे भी अधिक कोलाहलपूर्ण है। दुर्दम मन, अदम्य वासनाएँ, नीरस हृदय। मेरा भीतर और भी कटु एवं कष्टप्रद है। निराश हो गया मैं।' अब वे अपनेको सम्हाल नहीं सके और सिसकने लगे।

शरीरका कोई उपयोग नहीं। हृदयकी उत्सुकता एवं कुतूहल मर चुके। बुद्धि केवल कल्पनाके जालमें अपनी शक्ति व्यय करके रह जाती है।' रुक-रुककर कह रहे थे वे—'पृथ्वीका भार क्यों बढ़ाया जावे? क्यों संसारके सीमित विषयोंमें एक हिस्सेदारकी भाँति फैले। क्या बिगड़ जायगा विश्व या विश्वेशका यदि उनके क्षेत्रसे एक अर्धमृत पृथक् हो रहे?'

चन्द्रमा तुहिनके पर्देसे हल्का प्रकाश दे रहा था जगतीको। वृक्षोंकी शाखाएँ धूमिल रजनीमें भी हिमका उज्ज्वल भार उठाये चमक रही थीं। क्षण-क्षणपर उनसे 'धप'के शब्दके साथ हिमका ढेर गिरता जा रहा था। पक्षी और पशु चीख पड़ते थे। कमरेमें मन्द-मन्द दीपक टिमटिमा रहा था एक आलेमें, ऊनी कुर्ता पहने होनेपर भी मार्तण्ड मिश्र काँप रहे थे। दूसरी ओर कौपीन-धारी नङ्ग-धड़ङ्ग महापुरुषके रोमाञ्च भी नहीं था। कमरेका लड़खड़ाता जर्जर द्वार बन्दकर दिया गया था। रात्रिमें अपने समीप मार्तण्डको रहने देकर महापुरुषने अपनी सदाकी परम्परा भङ्ग कर दी थी।

'हिम क्यों पड़ता है?' महात्माने साधारण स्वरमें पूछा।

'बहुत अधिक शीत है ?' उत्तर स्पष्ट था।

'मेरा मतलब है पत्तोंको गलाने, हमको कँपाने तथा पशु-पक्षियोंकी चीखमें उसका क्या उपयोग है ?'

'मैं कैसे कह सकता हूँ। यों बहुत-से उपयोगोंकी कल्पना तो की जा सकती है; पर वास्तविक उपयोग तो स्रष्टा ही जाने।' एक दार्शनिकके योग्य उत्तर था।

'किन्तु अपना उपयोग सोचे बिना तुम्हारी बुद्धिकी खुजली नहीं मिटेगी।' महात्माने डाँट दिया—'जैसे तुम्हारा निर्माण तुमने स्वयं किया है। स्रष्टासे तुमसे कोई सरोकार नहीं।'

मस्तक झुका लिया मिश्रजीने। डाँटनेसे चुप ही किया जा सकता है, किसीका सन्तोष नहीं कराया जा सकता।

× × ×

रात्रिका हिम गल तो गया; किन्तु कीचड़ कर दिया उसने पथमें। वृक्षोंके पत्ते काले पड़ गये थे। लताओंकी हरीतिमा लुप्त हो गयी थी और उनका कण्टकमय कङ्काल अवतरित हो उठा था। कोठरीमें अब भी उस शीतल रुईकी ढेर पड़ी थी। स्नानादिसे निवृत्त तो क्या हुए, मानों महासमर जीत लिया। कुहरा फट गया था और मरीचिमालीकी किरणें शरीरमें जीवन-संचार कर रही थीं।

'तुम मानव हो—वह मानव, जिसकी मानवतापर देव और दानव दोनों ईर्ष्या करते हैं।' महापुरुष बाहर

एक स्थानपर बैठ गये थे और मिश्रजीको सम्मुख बैठा लिया था उन्होंने—'तुम्हें ठीक मानव बनना है। उससे न कम, न अधिक।'

'किसे कहते हैं मानव?' प्रभावपूर्ण ढङ्गसे महापुरुष रुक-रुककर बोल रहे थे—'सबलता एवं दुर्बलताके मिश्रित उस पुतलेको, जिसमें दूसरोंके प्रति भी वही अनुभूति हो जो उसे अपने सम्बन्धमें होती है। स्मरण रखो, जब मानव अपने ठीक स्वरूपमें खड़ा होता है, विश्वेशको भी ईर्ष्या होती है। वह भी अपने नारायण स्वरूपको छोड़ नीचे आता है और उस नरसे अनुनय करता है—'भैया, तुम मुझे अपना मित्र बनालो! उसका अनुनय तुमने सुना है 'सुहृदं सर्वभूतानाम्' के वहाने।'

'जब कोई पृथ्वीपर न देखकर पर्वत-शिखरपर देखता है और कूदकर चढ़ना चाहता है—पैर तोड़ लेता है अपने। खड़ेसे भी गिर पड़ता है।' महापुरुष गम्भीर हो रहे थे। उनकी वाणीमें ओज गूँज रहा था—'जब मानव देवत्वकी ओर देखकर छलाँग लेने चलता है, मानव भी नहीं रह पाता। वासनाएँ दबाये जानेपर अस्वाभाविक ढङ्गसे प्रतिक्रान्त होती हैं—दानव बन जाता है वह। सुख और शान्तिकी आशामें अशान्ति एवं उद्वेगके खड्डे में जा पड़ता है वह।'

'पहेलियाँ समझने योग्य नहीं हूँ भगवन्।' भावाक्रान्त होनेपर भी मिश्रजी अन्ततः दार्शनिक थे—'मैं तो सीधे मार्गका अभीप्सु हूँ। मुझे करना क्या चाहिये, प्रभु

इतना ही निर्देश कर दें।'

'तुम जानते हो कि क्रियाका कोई मूल्य नहीं। मूल्य क्रियामें स्थित कर्ताके भावका है। कर्ममें संस्कार सचमुच कर्म नहीं बताते। बनाते हैं कर्मगत भाव।' महापुरुषने दार्शनिकके लिए उसके समान शैलीका अवलम्बन किया—'भावका सम्बन्ध हृदयसे है, मस्तिष्कसे नहीं और हृदयमें परस्पर विरोधी दो भाव साथ-साथ नहीं रह सकते।'

कहनेको कुछ था ही नहीं। सूर्यसे प्रकाशमान सिद्धान्तोंको कोई कैसे अस्वीकार कर सकता है। मूक स्वीकृति थी जिज्ञासुके नेत्रोंमें।

'प्रत्येक हृदय प्रायः सुख-दुःख, मानापमानका समान अनुभव करता है।' महापुरुष कहते जा रहे थे—'और प्रत्येकको अपनी रुचिके प्रति समान आग्रह होता है। रुचि-भङ्गमें प्रत्येकको समान पीड़ा होती है।' एक क्षण रुककर उन्होंने श्रोताके मुखकी ओर गम्भीरतासे देखा।

'अब रहा क्या?' जिज्ञासु चौंका, उसे तो अभी कुछ नहीं मिला। 'इस सत्यको सजीव भर हो जाने दो। हृदयमें इसे कभी सोने मत दो। सब साधन स्वतः सिद्ध हैं। जो दूसरेके हृदयका सदा ध्यान रखेंगे उनमें वासनाएँ मर जायेंगी। वासनाएँ स्वार्थमूलक हैं और उनमें परोत्पीड़न अन्तर्हित ही रहता है। विश्व ही विश्वेशका स्वरूप है। हृदयमें उसे ठीक प्रकारसे आने दो। बस! उसका वह रूप, जो तुमने उसे दिया है, विलीन हो जायगा।'

'ओह, यह विश्व-प्रेम!' जिज्ञासुने निःश्वास छोड़ी—'इसका अभ्यासक्रम भी तो होगा ?'

'है, और तुम उसको जानते भी हो। भक्तिके साधनोंका तुम्हें अभ्यास भी करना ही है, हृदय उसीसे विशाल होता है। महापुरुष प्रस्तारमें नहीं गये—'तुम शास्त्रज्ञ हो। आचार्यगण उस (भक्ति) के साधनोंका वर्णन करते हैं।

---

# महत्संगकी साधना

'मेरी साधना विफल हुई।' गुर्जर राजकुमारने एक लम्बी श्वास् ली। वे अपने विश्राम-कक्षमें एक चन्दनकी चौकीपर धवल डाले विराजमान थे। ग्रन्थ-पाठ समाप्त हो गया था और जप भी पूर्ण कर लिया था उन्होंने। ध्यानकी चेष्टा व्यर्थ रही और वे पूजाके स्थानसे उठ आये।

राजकुमारने स्वर्णाभरण तो बहुत दिन हुए छोड़ रखे हैं। शयनगृहसे हस्ति-दन्तके पलङ्ग एवं कोमल आस्तरण भी दूर हो चुके हैं। उनकी भ्रमरकृष्ण घुङ्घराली अलकें सुगन्धित तेलका सिञ्चन न पाकर इधर-उधर उड़ा करती हैं। कौशेय वस्त्रोंका उपयोग भी वे नहीं करते। दुग्धोज्ज्वल हल्का मलमल ही उनकी धोती एवं उत्तरीय बनता है।

चिन्ताने उस भव्य भालपर हल्की लकीरें डाल दी थीं। अरुणिमा लिये गौरवर्णके मुखपर किञ्चित म्लानता आ गयी थी। पतला शरीर और भी क्षीण हो गया था। कर्णतः विस्तृत लोचनोंमें जलकण झल-मलाने लगे थे।

प्रातःकालीन दुग्धपान छूट चुका था। मध्याह्नमें भी मेवे और कुछ फल मात्र। रात्रिको तो कुछ लेते ही नहीं थे। गान-वाद्यमें प्रथम ही रुचि न थी और सखा-सहचरोंमें अब रहना अच्छा नहीं लगता था। राजोद्यान-का मालती कुञ्ज, सरोवरतट तथा अपना विश्राम कक्ष। सदा उदासीनता टपका करती थी। एकाकी ही दिन

और एकाकी रात्रि।

सेवक-सेविकाएँ समीप आते भी सहमती थीं, वह एकान्त उदासीन मुद्रा देखकर जो समझाने या हँसाने आता, वह स्वयं आँसू बहाता खिन्न मन लौट जाता। उस उदासीनतामें व्यापक शक्ति थी, क्योंकि सचाई थी उसमें। बढ़ती जाती थी वह उत्तोत्तर और विस्मृत होते जा रहे थे दिनोदिन राजकुमार स्नान-भोजनादि।

महाराजका अपने एकमात्र पुत्रपर अपार स्नेह था। इसी स्नेहके कारण महारानीसे वियुक्त होनेपर भी उन्होंने द्वितीय पाणि-ग्रहण नहीं किया। आजकल उनका वही हृदय चिन्तासे शुष्क होता जा रहा था। युवराजकी उदासीनता, शोकाकुल मुद्रा, उन्हें मर्म व्यथा देती थी।

'मैं नहीं चाहता कि वह राज्योपभोग ही करे।' महाराजने राजकुमारकी आध्यात्मिक रुचिमें कोई भी बाधा नहीं डाली। उनके साधनके सम्बन्धमें कभी प्रश्न नहीं किया। यहाँ तक कि जब राजकुमारने भोग सामग्रियोंका त्याग कर राजसदनको ही वन बना लिया, तब भी महाराज शान्त रहे, 'वह वीतराग हो तो भी मुझे आपत्ति नहीं। मेरा सौभाग्य होगा, यदि वह परम सिद्धिके मार्गमें आगे बढ़े। कुछ भी हो, वह प्रसन्न रहे। उसका क्लेश मैं नहीं देख सकता।'

आज व्यथा सीमापर पहुँच गयी थी। युवराजके प्रधान परिचारकने समाचार दिया था कि राजकुमारके नेत्र सूज गये हैं और लाल-लाल हो गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे रात्रिभर जागते रहते हैं तथा रुदन करते

रहते हैं। महाराज तिलमिला उठे थे। उन्होंने एकान्तमें परम धार्मिक मन्त्रीको बुला लिया था।

'चाहे जैसे भी हो, राजकुमारकी चिन्ताका कारण ज्ञात करना होगा।' महाराजने भरे कण्ठसे कहा—'मुझे तुम्हीं जीवन-दान दे सकते हो। कुछ भी करो, किन्तु उसे प्रसन्न करो।' स्वरमें आज्ञा नहीं, अनुनय था।

'महाराज आकुल न हों।' मस्तक झुकाकर वृद्ध मन्त्रीने प्रार्थना की—'मेरी जितनी बुद्धि या शक्ति है, प्रयत्न करूँगा। महाराज विश्वास रखें, यह सेवक कभी आजतक अपने प्रयत्नमें भगवान तीर्थङ्करकी कृपासे असफल नहीं हुआ है।' प्रणाम करके राजसदनमें चले गये महामन्त्री।

'मैं समझता था कि वासनाओंपर विजय प्राप्त कर ली है।' महामात्यको राजकुमारने अभिवादनके अनन्तर आसन दे दिया था और वे बैठ गये थे। जितने स्नेह-स्निग्ध स्वरमें पूछा था उन्होंने, उसकी उपेक्षा शक्य नहीं थी। राजकुमार खुल पड़े थे—'मेरी धारणा व्यर्थ सिद्ध हुई। देखता हूँ कि मेरा तो और भी पतन ही हुआ है।' दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा चलने लगी।

'आश्वस्त हो युवराज !' महामात्यने अपने उत्तरीयसे राजकुमारके नेत्र पोंछ दिये। वृद्ध अमात्यका राजकुमार-पर पुत्रकी भाँति स्नेह था और युवराज भी उनका आदर महाराजकी भाँति ही करते थे। 'मैं राजनीतिका ही पण्डित हूँ। अन्तःसंघर्षमें न तो कभी पड़ा हूँ और न मेरा ज्ञान ही कुछ है। इतनेपर भी सम्भव है कि मैं

आपकी कुछ सहायता कर सकूँ। विश्वमें प्रायः सब कहीं साम्य है। यदि बाह्य संघर्षसे अन्तःसंघर्ष कुछ भी समता रखता हो तो मेरी राजनीति काम दे जायगी। आप स्पष्ट करें अपनी स्थितिको तो कृपा होगी।'

युवराजने बताया कि किस प्रकार साधनके आरम्भ-कालमें वासनाएँ विलीन हो गयी थीं। मन एकाग्र हो जाता था। उन्हें अपार शान्ति एवं आनन्द प्राप्त होता था। अब यह स्थिति है कि मन एक क्षणको भी टिकता नहीं लक्ष्यपर। जिन वासनाओंको वह अत्यन्त हेय समझते रहे हैं, वे भी अब विक्षिप्त किये रहती हैं। पाठ और जपके समय भी मन वैषयिक उधेड़-बुनमें ही लगा रहता है। पता नहीं कहाँ, ये भोग-लिप्साएँ एवं भौतिक महत्त्वाकांक्षाएँ छिपी पड़ी हैं।

'बस?' मुस्कराये महामात्य—'अभी आप बालक हैं। अरे, इतना तो मैं भी बता सकता हूँ कि शत्रु प्रथम आक्रमणमें मस्तक झुका लेते हैं, किन्तु यदि आक्रमण प्रचण्ड हो और वे देख लें कि उनके समूलोच्छेदका प्रयत्न हो रहा है तो उद्धत हो जाते हैं। उनका वेग प्रबलताकी सीमापर पहुँच जाता है।'

'तब क्या मैं असफल ही रहूँगा?' महामात्यके हास्यने तनिक आश्वासन दिया था। एकटक उनके मुखकी ओर भरे दृगोंसे राजकुमार देख रहे थे।

'यह तो आप देखते ही हैं कि कमरोंमें झाड़ू लगाते समय धूल अधिक उड़ती है।' रोगका निदान ठीक कर लिया गया था और निदान ठीक होनेपर चिकित्सामें

कठिनाई नहीं हुआ करती। झाड़ू लगाना छोड़ा नहीं जा सकता। धैर्यपूर्वक प्रचण्ड आक्रमण एवं शत्रुके एक-एक अङ्गका उच्छेद—दुर्बल अङ्गोंपर प्रथम प्रहार। यदि यह नीति काममें ली जाय तो विजय सुनिश्चित रहती है।'

× × ×

'यह कैसी सुगन्धि है? कहाँसे आ रही है?' गुजर युवराज मृगया नहीं किया करते। वैसे उन्होंने शस्त्र-संचालनकी सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त की है। उनका बाण लक्ष्य-वेध करनेसे कभी भी चूकता नहीं। वनका नैसर्गिक सौंदर्य उन्हें अत्यधिक आकर्षित करता है। प्रायः सम-वयस्क सखाओंके साथ आखेटके वेशमें अश्वपर वे वन-भ्रमणके निमित्त ही निकलते हैं। हिंस्र पशुओंके आक्रमण-के समय, जिसकी सम्भावना यहाँ बनी ही रहती है, सावधान बना रहना ही इस आखेट वेशका तात्पर्य है। वन विशेषज्ञ भील तथा मुख्य आखेटक इसी सावधानीके कारण साथ लिये जाते हैं।

मन्द शीतल पवन चल रही थी और वह एक अत्यन्त नासिका-मधुर सुरभिसे प्रपूरित थी। वन प्रान्त उसीके सौरभसे पूर्ण हो गया था। अचानक वह सुगन्धि आने लगी थी। सभी चौंके थे और सबने लम्बी साँसें खींचकर उस पवित्र गन्धको भली प्रकार ग्रहण करनेका बारम्बार प्रयत्न किया था।

'किसी पुष्पकी तो यह सुरभि नहीं है।' एक क्षण भली प्रकार सूंघकर आखेटकने उत्तर दिया। किसी भी

पुष्पमें इतनी व्यापक तथा मधुर सुरभि नहीं होती। पुष्प-सौरभका यह प्रकार भी नहीं हुआ करता। वन-वायु भी यहाँकी सब मेरी परिचित हैं। उनमें किसी-किसीमें ही सुगन्धि होती है और वह मन्द।

'सुगन्धि तो है ही और वह वनसे ही आ रही है।' राजकुमारने भीलोंकी ओर मुख किया। कौतूहल सभीके मनमें था।'

'पता तो मुझे भी नहीं है।' सबसे बुड्ढे भीलने मस्तक झुकाकर अभिवादन करते हुए कहा। किसी बातका आरम्भ करते समय प्रणाम करनेका स्वभाव हो गया है इन भीलोंका। परस्पर तो ऐसा नहीं करते, किन्तु राजपुरुषोंके साथ बोलनेमें उनकी यह प्रकृति जागृत हो जाती है। 'वनके किसी वृक्षकी छाल किसी पशुने रगड़कर छुड़ा दी होगी। यह उसीके रसकी गन्ध है। सम्भव है, कोई सुगन्धित वृक्ष मद टपकाने लगा हो। वैसे ही, जैसे अन्नदाताने नीमके वृक्षसे कभी-कभी रस टपकते देखा है।'

'महाराजके लिए अत्यन्त प्रिय उपहार होगा।' गुर्जर नरेश अनेक प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंका संग्रह किया करते हैं। उनका वस्त्र, शरीर, राजसदन विभिन्न सौरभसे पूर्ण किया जाता है। सिञ्चन, धूम्र प्रभृति सभी सुगन्धि-प्राप्तिके साधनोंसे उन्हें प्रेम है। युवराज आज इस अद्भुत सुरभिसे पिताको प्रसन्न करनेकी आशासे स्वयं आनन्दित हो गये—'हम इसका अन्वेषण करें'

'वन प्रान्त सघन है ?' आखेटकने निवेदन किया।

'प्रपातके समीप प्रभु मौलिश्रीकी शीतल छायामें तनिक देर विश्राम करें। अश्व कुछ हरित तृणोंसे अपनेको तृप्त कर लें। मैं भीलोंके साथ जाता हूँ। जल्दी ही सौरभका कारण श्रीमानके सम्मुख उपस्थित होगा।'

'मैं भी तो वन-भ्रमण करने ही आया हूँ।' राजकुमारको आलसीकी भाँति पैर फैलाकर प्रपातके पास लेट लगाना स्वीकार नहीं था। वे कुरंगकी भाँति कुलाचें लेनेमें आनन्द मनानेवाले जीव थे। 'तुम तो वृक्षकी एक डाल या धातुका एक टुकड़ा ले आओगे। मैं भी देखना चाहता हूँ इसका उद्गम। यह भी कि इसका कोषागार कितना है।'

किसीने विरोध नहीं किया। मित्र मण्डली भी स्वयं निरीक्षणके पक्षमें थी। घोड़ोंसे मुख मोड़ दिये गये। पवनके मार्गकी ओर तनिक इधर-उधर मुड़ते हुए, वृक्ष एवं झाड़ियोंके झुरमुटसे बचकर जहाँ मार्ग मिल सकता था, उधरसे निकलते जा रहे थे। भील आगे हो रहे थे और वही मार्ग प्रदर्शन कर रहे थे।

सुगन्धि जितनी व्यापक थी, उसे देखते हुए उसका उद्गम कहीं समीप ही होना चाहिये था। पवन मार्गका अनुसरण करनेसे सौरभमें अभिवृद्धि तो हो रही थी, किन्तु बहुत मन्द क्रम था वर्धनका। भीलोंकी अनुभवी घ्राण शक्ति तथा शिकारीकी तीव्र नासिका भी गन्धोद्गमकी दूरीका अनुमान करनेमें असफल रहीं। सभी समझ रहे थे कि कहीं समीपसे ही यह सुगन्धि आ रही है। जब आधे योजन तक भी सुगन्धि बढ़ती ही गयी तो उन्हें

आश्चर्य हुआ।

'जान पड़ता है, कोई जड़ी पुष्पित हुई है।' वृद्ध भीलका अनुभव है कि कभी-कभी वनमें कोई विशेष औषधि पुष्पित होनेके समय ऐसी अद्‌भुत सुगन्धि फैला दिया करती है। ऐसी जड़ियोंकी सुगन्धि कई योजन तक विस्तीर्ण हो जाती है और समीप जानेपर वे अपनी छुद्रताके कारण ढूँढ़नेसे मिलती हैं नहीं।' उसे भला यह कैसे पता हो सकता है कि नासिका एक सीमातक ही गन्ध ग्रहण करनेमें समर्थ है। सीमासे अधिक गन्ध होनेपर वह गन्धको सूचित करना बन्द कर देती है। यही कारण है कि अत्यधिक गंधवाली औषधियोंकी सुगन्धि दूरसे तो प्राप्त होती है, किन्तु समीप जानेपर कुछ भी जान नहीं पड़ता। इस दशामें उस औषधिको पहचाननेका कोई साधन नहीं रह जाता।

'अभी दोपहर नहीं हुआ है और मार्ग भी परिचित ही है।' राजकुमारने दृढ़ निश्चय कर लिया था। 'हम अभी कई घण्टोंतक इस गन्धका अनुसरण कर सकते हैं। अन्ततः वन-भ्रमण ही तो करना है, आज इधर ही सही।'

सहसा सौरभ प्रान्त संकुचित होने लगा। सुगन्धिकी तीव्रता एक निश्चित केन्द्रको सूचित करने लगी। पूरे एक योजन चले होंगे वे। भील अचकचाकर खड़े हो गये। उन्होंने एक झुरमुटकी ओर राजकुमारको देखनेका संकेत किया।

एक खब सघन तमालका वृक्ष था। नीचे पारसीक

कालीनकी भाँति कोमल हरित दूर्वादल फैला था। एक हाथकी कुहनी पृथ्वीपर टेककर उसीकी हथेलीपर मस्तक रखे कोई महापुरुष लेटे थे। पूरा लम्बा शरीर, मांसल-काय, गौरवर्ण, विशाल भुजाएँ, क्षीण कटि तथा विशाल वक्ष। उनकी हथेलियाँ तथा फैले हुए पैरोंके तलवोंकी लालिमा एवं कोमलता किसी सद्योजात शिशुका स्मरण कराती थीं।

प्रकाशका एक मण्डल बन गया था चारों ओर। यह उनकी अङ्गकान्तिका प्रकाश था। घुँघराली काली रूखी अलकें धूलसे भर गयी थीं और मुख-मण्डलके चारों ओर बिखर रही थीं। सम्पूर्ण दिगम्बर थे वे और शरीरपर धूलि छायी थी। मन्द-मन्द मुस्कान प्राणोंमें वह मादकता फैला रही थी, जिससे युवराज सभी साथियोंके साथ मन्त्र-मुग्ध हो रहे थे। करवट लेटे थे वे और सबने देख लिया कि लेटे-लेटे ही उन्होंने शौच कर लिया है। जिस सुगन्धिका अन्वेषण करते वे यहाँ तक पहुँचे थे, वह उसी मलसे उद्भूत हो रही है।

आश्चर्यसे राजकुमारने वहीं अपना नाम बताते हुए पृथ्वीपर दण्डवत् की अश्वसे उतरकर। महापुरुषने जैसे न कुछ देखा और न सुना ही।

× × ×

'प्रयत्नकी तो सीमा हो चुकी।' राजकुमार स्वयं महामन्त्रीके निवास-स्थानपर जा पहुँचे थे। अत्यन्त आदरपूर्वक उन्होंने आसन दिया। अर्घ्य, पाद्यादिको

उन्होंने निषेध कर दिया। महामन्त्री संकुचित हो रहे थे कि उन्हें ही क्यों नहीं बुला लिया गया। युवराजके अनुरोध करनेपर वे समीप ही दूसरे आसनपर बैठ गये थे। राजकुमार अपनी समस्या सुलझाने आये थे—'मैं जितना ही प्रयत्न करता हूँ, अन्तरसे उतनी ही प्रतिक्रिया होती है।'

अमात्यने मस्तक झुका लिया। वे कुछ क्षण तक नीरव रहे। राजकुमार एकटक उनके मुखकी ओर देख रहे थे। 'अन्ततः कोई ऐसा भी समय होता है, जब आपको शान्ति प्राप्त होती? भले वह शान्ति कुछ काल तक ही क्यों न रहती हो।'

मैंने आपसे एक तेजोमय महापुरुषकी चर्चा की है।' उत्सुकतापूर्वक राजकुमारने कहा।

'मैं परिचित हूँ उससे।' महामन्त्रीने युवराजको चौंका दिया—'मैंने उन्हें वनमें देखा और वैसे त्रिभुवन-सुन्दर पुरुष छिपा नहीं करते। अश्वमेधके समयमें मैं राजप्रतिनिधिके रूपमें सम्राट्की सेवामें तीर्थराजमें उपस्थित हुआ था। हमारा सौभाग्य है कि वीतराग होकर अवधूत-वेशमें भारत सम्राट् भगवान् ऋषभदेव अपने श्रीचरणोंसे हमारी वनभूमिको आजकल पावन कर रहे हैं।'

'भगवान् ऋषभ देव!' राजकुमार और भी चौंके—'एक सम्राट्में यह शक्ति, इतनी शान्ति, इतना व्यापक प्रभाव?'

'सम्राट् तो अब उनके ज्येष्ठ पुत्र महाराजाधिराज

भरत हैं।' महामन्त्रीने आदरपूर्वक मस्तक झुकाया—'वे तो स्वयं श्रीहरिके प्रकट रूप हैं। यह सब तो नाट्य मात्र है उनका। श्रीमान्‌ने सुना नहीं कि लोक प्रसिद्ध योगाचार्य उनके श्रीचरणोंमें उपस्थित होकर अपने मार्गके लिए प्रकाशकी याचना करते रहते हैं ?'

'आपने अभी तक प्रयत्न नहीं किया यह सब जानते हुए भी कि राजसदन उनकी पावनतम पद-धूलिसे कृतार्थ हो ?' राजकुमारने आश्चर्यके साथ अनुशासनका स्वर बनाया—'महाराज क्या अवगत हैं इस बातसे ?' भला महाराज अवगत होते तो क्या महापुरुष अब तक यहाँ पधारते नहीं। राजकुमारने धारणा करली।

'महाराजको अविदित नहीं है।' महामन्त्री गम्भीर बने रहे। 'वीतराग अवधूत होकर प्रभु इस समय जड़, उन्मत्त एवं अज्ञानी नाट्य कर रहे हैं। कोई भी आग्रह, कैसी भी प्रार्थना उन निरपेक्षको प्रभावित करनेमें असमर्थ हैं। आपकी एकान्त साधनाने ज्ञान नहीं होने दिया कि महाराज अभी चार दिन पूर्व ही महापुरुषके दर्शनार्थ पधारे थे।' राजकुमार प्रायः आजकल अपने विश्राम कक्षमें-से बाहर नहीं निकलते और सेवक अत्यावश्यकसे एक शब्द भी अधिक बोलनेका उनसे साहस नहीं कर पाते।

'मेरा दुर्भाग्य' एक दीर्घ श्वास ली युवराजने। 'मैंने देखा है कि जब भी मैं उन श्रीचरणोंमें उपस्थित हुआ हूँ, वासनाएँ स्वतः विलीन हो जाती हैं। मन चञ्चल। ताभूल जाता है हृदयमें आनन्दका एक अजस्र प्रवाहित होने लगता है। कई दिनोंतक बनी रहती है

यह सम्पत्ति।'

'आप महाराजसे आज्ञा ले लें।' महामात्यने उत्साहके स्वरमें कहा। 'उनके मिलनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। एक वस्त्र-शिविर, सेवक तथा सभी सुविधा सामग्री साथ रहेगी। आज्ञा मिल गयी तो यह सेवक भी सदा उपस्थित रहेगा। कुछ काल महापुरुषके समीप बने रहना आवश्यक है आपके लिए।

'कभी-कभी ही तो जा पाता हूँ।' असमंजसके स्वरमें राजकुमारने सूचित किया—'न पाठ कर पाता हूँ और न जप। समस्त दैनिक कृत्य अव्यवस्थित हो जाते हैं। यही असुविधा होती है।'

'यह पाठ और जप, नियम और संयम, धारणा एवं ध्यान, ये सब हैं किसलिए ?' स्नेह स्निग्ध कण्ठ था अमात्यका—'ये सब मनोनिग्रहके लिए ही हैं। इन सबके द्वारा प्रयत्नपूर्वक दीर्घकालमें भी जो नहीं होता, उसे महापुरुषोंका संग कुछ क्षणोंमें ही सम्पूर्ण कर देता है। अतः आपको इस प्रपञ्चसे परित्राण पाना चाहिये। दृढ़ होना चाहिये। उसी (महत्संग)की साधना कीजिये। (एकमात्र) उसीकी (निश्चयपूर्वक) साधना कीजिये !!

---

# भगवानने क्षमा किया

ऊँट चले जा रहे थे उस अन्धड़के बीचमें। ऊपरसे सूर्य आग बरसा रहा था। नीचेकी रेतमें शायद चने भी भुन जायेंगे। अन्धड़ने कहर बरसा रखी थी। एक-एक आदमीके सिर और कपड़ोंपर सेरों रेत जम गयी थी। कहीं पानीका नाम भी नहीं था और न कहीं किसी खजूरका कोई ऊँचा सिर दिखायी पड़ रहा था। जमालको यह सब कुछ नहीं सूझ रहा था। उसके भीतर इससे भी ज्यादा गर्मी थी। इससे कहीं भयानक अन्धड़ चल रहा था उसके हृदयमें। वह उसीमें झुलसा जा रहा था। उसे पता तक नहीं था कि उसका ऊँट कहाँ जा रहा है। वैसे काफिलेके दूसरे ऊँटोंके साथ उसका ऊँट भी ठीक मार्गपर ही चल रहा था। मार्गकी कल्पना ही थी, रेतके साठसे सौ, दो सौ फीट ऊँचे टीलोंके मध्यमें कोई मार्ग नहीं था।

ऊँटोंकी छाया छोटीसे अब लम्बी होने लगी। पूरबमें बढ़ने लगी। सूर्य पश्चिममें लुढ़कने लगा। अन्धड़ घट रहा था। धीरे-धीरे शाम हुई। उस धूलि भरे आकाशमें डूबते सूर्यने आग लगा दी। जैसे अपने चारों ओर इस आगको देखकर ही सरदारने काफिलेको एक चौरस ऊँचे स्थानपर रोकनेका आदेश दिया।

'अरे जमाल, तुम क्या उतरोगे नहीं ?' किसीने उसके ऊँटकी नकेल पकड़ ली। दूसरे ऊँटोंके साथ वह भी खड़ा हो गया था और सोचता होगा कि उसका

सवार क्यों उसे छुटकारा नहीं दे रहा है। वह जैसे जाग पड़ा हो। उतर आया ऊँटसे। एक ओर उसी जलती रेतपर लुढ़क गया।

आज पाँच दिन हो गये काफिलेको चले। नख-लिस्तानके सूखते ही डेरा-डंडा उठ गया था और अभी तक दूसरे नखलिस्तानका पता तक नहीं था। हम रास्ता तो नहीं भूल गये हैं ? इतना भयंकर था यह प्रश्न कि कोई मुखपर इसे लाने तककी हिम्मत नहीं कर सकता था। फिर भी सबके नेत्रोंमें यही प्रश्न था। 'या अल्लाह ! ऐसा न हो।' सबके हृदय एक स्वरसे चिल्ला रहे थे। एक-एक बूँद पानीके लिए तड़प-तड़पकर मरना और अपने चाकू या दाँतोंसे अपनी ही नसोंको काटकर रक्त पीना। क्या अर्थ है इसके अतिरिक्त मार्ग भूल जानेका ?

दिन भरसे एक बूँद जल कण्ठके नीचे नहीं गया था। केवल शिशुओंको घण्टे-दो-घण्टे चिल्लानेपर एक चम्मच पानी मिलता था। कण्ठ सूख गये थे। सिर घूम रहा था और लगता था कि कलेजा निकल आवेगा। नेत्रोंके आगे अंधकार छा रहा था और जलते हुए नेत्र बाहर निकल पड़ते थे।

मशकोंका जल परसों खत्म हो गया। किसीके भी चमड़ेके थैलोंमें एक बूँद पानी न रहा था। छोटे बच्चोंके लिए रखा पीनी भी तीसरे पहर पूरा हो गया। कल एक ऊँट हलाल हो चुका है। इस प्रकार ये पन्द्रह-बीस ऊँट कितने दिन चलेंगे।

'आज कौन अपना ऊँट देगा काफिलेके लिए ?' सरदारने पूछा। वाणी उसकी भी अटक रही थी। जीभ सूख गयी थी।

'बारी तो हमीदकी है।' कहनेवालेने हमीदको इस प्रकार देखा जैसे खा जायगा।

'वह तो है ही।' सरदारने निश्चित उत्तर दिया—'पर एकसे क्या होता है? सब बहुत प्यासे हैं और कल दिनके लिए बच्चोंको भी पानी रखना ही होगा।'

'मेरा ऊँट ले लो।' बड़े आश्चर्य, आदर एवं चौंककर लोगोंने जमालको देखा। भला अपना जीवन इतनी उदारतासे कौन दूसरोंको दे सकता है। इस भयङ्कर रेगिस्तानमें ऊँट ही तो जीवन है।

'खुदाने चाहा तो कल हम नखलिस्तान पहुँच जायेंगे।' कृतज्ञतापूर्वक सरदारने कहा—'तुम मेरे ऊँट-पर मेरे साथ चलो और वहाँ पहुँचते ही हम तुम्हारे लिए ऊँटका वह बच्चा दे देंगे जो काफिलेमें पहले उत्पन्न होगा।' सरदारकी ऊँटनी ही दो-चार दिनमें बच्चा देनेवाली है। काफिलेवालोंको यह पता था ही और इस समय तो पानीका सवाल था। सस्ते महँगे सौदेका समय नहीं रहा था।

'मुझे कोई बदला नहीं चाहिये। जमाल ज्यों-का-त्यों रेतपर पड़ा था—'अगर मुझे यकीन न हो कि अगले नखलिस्तानमें हजरत इमामसे मिल सकूँगा और वह मुझे खुदासे माफी दिला देंगे तो मैं इस रेतसे उठना भी पसन्द नहीं करूँगा।'

कृतज्ञता प्रकाशके लिए भी समय नहीं था। हमीदका ऊँट भी ले लिया गया और इसमें उससे पूछनेकी कोई बात नहीं थी। वह तो नखलिस्तानसे चलते वक्त तय हुए क्रममें आता था। हमीद मन मसोसकर रह गया। रस्सेसे जकड़कर दोनों ऊँट गिरा दिये गये। निरीह पशु बलबलाकर रह गये। तेज छुरा उनके पेटमें घुसा दिया गया। जरूर ही ऐसा करते समय मौलवीने कलमा पढ़नेकी तकलीफ की।

ऊपरकी खाल उतारकर दाहिनी कोख में-से पानीकी अंतड़ी सावधानीपूर्वक बाहर निकाली गयी। ह आंत भारतीय ऊँटोंमें नहीं होती। रेगिस्तानी ऊँटको जब पानी नहीं मिलता तो इस आँतसे पानी निकाल लेता है मुखमें और इस प्रकार सात दिन तक वह अपनी प्यास अपनी आँतके पानीसे बुझा सकता है। दोनों ऊँटोंकी आँतोंमें छोटे छिद्र करके सब पानी मशकोंमें भर लिया गया।

'पहिले जमालको !' सरदारने डाँटा। लोग अपने-अपने चमड़ेके थैले लेकर टूट पड़े थे और कोई किसीसे पीछे लेनेको तैयार नहीं था। वैसे सबको बराबर-बराबर पानी बँटेगा, यह सब जानते थे। जमाल रेतपर पड़ा था और पानीमें भाग बँटानेकी उसने कोई चेष्टा नहीं की थी। अन्ततः एक अरब युवक उसके पास गया और उसका। थैलापानीसे भरकर उसके पास रख आया।

'कलतक'—बस कल शामतक ही जमाल बड़बड़ा रहा था—'मेरे परवरदिगार, अगर कल शामतक कोई

रास्ता न मिला मुझे तुझसे माफी पानेका तो मैं तेरे दिये पानी और कबाबको नहीं कबूल करूँगा। कल न सही, परसोंका आफताब मुझे जरूर जला देगा और तब मैं खुद तेरे कदमोंमें अपने कसूरकी माफी माँगने हाजिर हो सकूँगा।' कुल तीन-चार घूँट पानी उसने गलेसे नीचे उतारा।

× × ×

लम्बा छरहरा बदन, बड़ी-बड़ी आँखें, कश्मीरी सेव जैसा रंग। वह जितना सुन्दर था, उतना ही चञ्चल भी। सफेद तुर्रेदार पगड़ीमें अपने घुँघराले बाल छिपाये ढीला पाजामा और चोंगा पहिने दोपहरीमें भी कैम्पमें इधर-से-उधर उछलता रहता था। उसके उन्मुक्त हास्यसे तम्बू गूँजता ही रहता था।

जमालका बाप पिछले साल मरा है और माँ उसे बचपनमें ही छोड़ गयी थी। अरबका लड़का रोता नहीं। नटखट जमाल कभी मनहूस सूरतमें नहीं देखा गया। वह जैसे बचपनमें किसी सोते हुएकी नाक या खुले मुखमें रेतकी मुट्ठी डाल दिया करता था, वैसे ही अब भी बुड्ढोंकी लम्बी दाढ़ियोंमें अवसर पाकर खजूरके बीज फँसानेसे नहीं चूकता।

कई सुन्दर लड़कियाँ उसे चाहती थीं। सरदारने उसे अपना दामाद बनाना चाहा था। और भी प्रस्ताव आते थे! उसका एक बँधा उत्तर था—'मैं बकरियोंका झुण्ड चरा तो सकता हूँ, किन्तु एक मोटी बकरी गलेमें

नहीं बाँध सकता। अभी कुछ बूढ़ा थोड़े ही हुआ जा रहा हूँ।'

बहुधा डाँटा जाता था। बूढ़े बिगड़ पड़ते थे उसपर, जब वह उनकी कोई वस्तु छिपा देता था। बड़े साफ दिलका था। सभी मनमें उसकी इज्जत करते थे। किसीके क्रोधका उत्तर क्रोधसे नहीं दिया उसने कभी। उसका हास्य सब उड़ा जाता था। साथ ही अपनी किसी वस्तुके लिए इन्कार करना भी उसे आता नहीं था। उसके भागका खजूर, पानी, कबाब दूसरे उड़ा जाते अक्सर। चमड़ेका थैला, चाकू, कपड़े तो बहुत छोटी चीजें थीं।

भावुक था। रोजा उसने कभी नहीं छोड़ा और सुबह, शाम तथा दोपहरकी तीन नमाज तो बराबर पढ़ ही लेता है। अपने तम्बूमें वही अकेला है जो नमाज पढ़ते वक्त अक्सर रो पड़ता है। पता नहीं उस हँसीके पुतलेमें उस वक्त कहाँसे दुःख उमड़ पड़ता था। यों वह मजाक करनेमें खुदाको भी नहीं छोड़ता। अक्सर कहता है—'मुझे अगर खुदा मिल जाय तो उसकी खूब घनी, उजली, लम्बी दाढ़ीमें ढेरसे खजूरके बीज उलझा दूँ। इतने बीज कि फरिश्ते दिन भरमें भी न निकाल सकें।'

जमालको अधिक आकर्षित किया है बूढ़े अहमदने। वह हाथमें छोटी-सी खजूरके पत्तोंकी लकड़ी बनाकर, कमर झुकाकर काँपता, मुँह चलाता और जलती दोपहरीमें तम्बूमें अहमदकी नकल करता है तो कहकहोंकी बाढ़ आ जाती है। बुड्ढा गालियोंकी बौछार शुरू करके अभिनयको और भी रसमय बना देता है।

'आज पानीसे चलो कुछ मोटे-मोटे मेंढ़क पकड़ लायें।' उसने प्रस्ताव किया गुलनारसे। यह उससे भी नटखट लड़की है। जमालकी शरारतों, स्वांगों और उछल-कूदमें वह अक्सर शामिल हो जाया करती है। 'खूब मोटे-मोटे, पीले-पीले।'

'तू मेंढ़क खाने लगा है, ऐं!' मुँह बिचकाया उस शैतान लड़कीने 'मैं अभी जाकर अब्बासे कहती हूँ। सब कह दूँगी। अरब होकर तू मेंढ़क खाने लगा है। छिः!' ताली बजाकर वह हँसते-हँसते दुहरी हो गयी। लोट-पोट हो गयी। उसी प्रकार हँसते-हँसते भागनेका उपक्रम किया उसने।

'अब पिटेगी तू।' जमालने मुट्ठीभर घुँघराले बाल पकड़े उसके 'तेरे सिरमें तो लीद भरी है और वह भी ऊँटकी नहीं गधेकी।' गायके गोबरकी कल्पना भी नहीं पहुँचती वहाँ।

'छोड़, नहीं तो चिल्लाती हूँ।' दोनों हाथोंसे नोंच लिया उसने। मुखके सामने मुट्ठी कर दी—'मैं कहूँगा कि तू रेतके पतंगे पकड़कर कच्चे ही चबा रही थी।' अपनी सूझपर वह खुद खुलकर हँस पड़ा।

'झूठा कहींका!' रोषका स्वाङ्ग किया लड़कीने, 'अरे, छोड़ तो! मेरे बाल उखड़े आ रहे हैं।' उसने स्वाङ्ग एवं आकृति ऐसी बनायी जैसे सचमुच उसे बड़ा कष्ट है।

'आज अहमदको खूब छकाना है।' जमालने एक बार खींचकर बाल छोड़ दिये।

'उफ, भाड़में जा तू और अहमद भी !' लड़कीने मुख बनाया—'मेरे बाल उखाड़ लिये।' बालोंको संभालने लगी वह। क्रीड़ामें शामिल तो उसे होना ही था, चली कैसे जाती ?

'सुन भी तो !' जमालने इधर-उधर देखा। कोई पास नहीं था। उनके षड्यन्त्रका पता किसीको न चले, इसलिए धीरे-धीरे कानमें कुछ फुसफुसा गया उस लड़कीके।

'बहुत खूब !' खिलखिला उठी वह कूद पड़ी—'बुड्ढा भी क्या समझेगा।'

'चुप भी रह !' शायद वह उत्साहातिरेकमें अभी भण्डा-फोड़ कर देती। सावधान किया जमालने और दोनों नखलिस्तानकी ओर चले गये।

बुड्ढेको क्या पता था कि उसके साथ क्या शरारत की गयी है। वह अपनी पाँचवीं नमाज पढ़ने जाये। नमाज पर जा खड़ा हुआ। उसका मुसल्ला दिन भर बिछा रहता है और वही एक है जो सातों नमाज बादस्तूर पढ़ता है।

जमाल थोड़ी दूरपर बैठा गम्भीर बना था और उसके पास ही गुलनार पीछेको मुख किये, मुखमें कपड़ा डाले, इस प्रकार हिल रही थी मानो भूकम्प आ गया है उसके पेटमें। बुड्ढेका ध्यान इन शैतान लड़कोंकी ओर नहीं था। दूसरे अपने-अपने बिस्तरोंपर लेटे थे और कुछ लोग एकत्र होकर गप्पें लड़ा रहे थे।

बुड्ढा घुटनोंके बल बैठा। गुलनार और जोरसे हिलने लगी—'तुझे जूड़ी तो नहीं आ गयी ?' जमालने चुटकी ली। वह तनिक हटकर बिना बोले हिलती रही।

बुड्ढेने मत्था टेका और कूद पड़ा वहाँसे इस तरह जैसे किसी साँपपर सिर पड़ गया हो। उसने गौर किया था पहले कि सिर रखनेकी जगह जाये नमाज कुछ ऊँची उठी है—'या अल्लाह !' वह चीख पड़ा और हाँफ रहा था। कोई जानवर नीचेसे जाये नमाजको हिलाने लगा था।

सब चौंककर दौड़ आये। लड़के पेट पकड़कर लोट-पोट हो रहे थे। मुसल्लेका कपड़ा हटाते ही सब-के-सब हँसने लगे। पाँच मेंढ़क खूब मोटे, पीले, रेतमें गड्ढा करके एक लाइनसे विराज रहे थे। उनके पैर आपसमें बँधे थे और इसीलिए कूदनेकी कोशिश करके भी वे कूद नहीं पा रहे थे !'

'नमाजके वक्त भी मजाक !' बुड्ढा गुस्सेसे चीख रहा था और काँप भी रहा था—'खुदाका भी कसूर करनेसे नहीं डरते तुम ?'

'खुदाका कसूर !' जैसे कलेजेमें लगे ये शब्द। हँसी काफूर हो गयी। चेहरा स्याह पड़ गया। धक्से हो गया जमाल। उसने फिर नहीं देखा कि लोग हँस रहे हैं। गुलनार लोट-पोट हो रही है और बुड्ढा अहमद एक

स्वरमें गलियाँ बके जा रहा है। दोनों हाथोंसे सिर पकड़ लिया उसने।

× × ×

चहचहाता कैम्प मनहूसीका डेरा हो गया था। नखलिस्तान तो क्या सूखा, सबको एक आफतसे छुट-कारा मिला। दूसरी जगह जमालकी तबियतमें फर्क आनेकी उम्मीदने किसीको रास्तेकी दिक्कतें सोचने नहीं दीं। जो दिनभर सबको हँसाता रहता था, उसका अचानक अपने आपमें घुलते रहना और उसीसे लेना सबको तकलीफदेह था। उसकी उदासीने तो शैतानकी खाला गुलनार जैसी लड़कीको भी गुमसुम बना दिया था।

किसीका समझाना-मनाना काम नहीं आया। बुड्ढे अहमदने आँखोंमें आँसू भरकर उसे पुचकारा। उसका एक उत्तर है—'खुदाके कसूरको तो खुदा ही माफ कर सकता है।' गुलनारके स्नेहभरे हाथको उदासीसे उसने हटा दिया और उसका आँसू भरा खेलने, घूमने और तनिकसे टहलनेका आग्रह भी उपेक्षित हो गया।

× × ×

मार्गकी तकलीफें भूल गयीं सबको जब उन्हें एक खूब बड़ा, ऊँचे-ऊँचे खजूरके फलोंसे लदे पेड़ोंसे घिरा, दूर तक घासके मैदानसे हरा-भरा नखलिस्तान मिला। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वहाँ उन्हें किसी फिरकेसे

लड़ना नहीं पड़ा था। वैसे अपने भालोंको उठाये, मरने-मारनेको तैयार होकर ही उन्होंने नखलिस्तानकी भूमिमें प्रवेश किया था। लड़ाईका न होना ही आश्चर्यका विषय था। कुलमें एक छोटा तम्बू था नखलिस्तानमें। एक पागल बुड्ढा उसमें रहता था। बुड्ढेने कोई एतराज नहीं किया इनके बसनेमें और उस बुड्ढेको जिसे सारा अरब श्रद्धासे सिर झुकाता है, खदेड़नेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ी। साहस भी नहीं था किसीमें।

तम्बू खड़े हो गये एक गोलाईमें। बीचमें दोपहरीमें आराम करनेके लिए एक बड़ा तम्बू लगा। सब दोपहरीमें इसीमें रहते हैं। ऊँट चरनेको छोड़ दिये गये। भरपेट पानी पिया सबने और खूब खजूर खाये। मशकें और घड़े भरकर रख दिये गये।

'जमालने अब तक न तो पानी पिया और न कुछ खाया ही है।' सबसे पहिले गुलनारको उसकी याद आयी। अभी तक सभी अपने खाने-पीने और तम्बू लगानेमें तथा सामान रखनेमें लगे थे—'वह चुपचाप रेत पर पड़ा है।' सरदारकी प्यारी लड़कीने अपने अब्बाका ध्यान आकर्षित किया और कुछ खजूर तथा चमड़ेके थैलेमें पानी लेकर दौड़ गयी।

'थोड़े खजूर खालो और पानी पीलो!' प्रायः सारा काफिला उसे घेरकर खड़ा हो गया था। सभीका एक ही हठ था। अँधेरा बढ़ता जा रहा है। हम लोग तुम्हारा तम्बू खड़ा कर देते हैं और सामान भी ठीक-

ठिकाने लगा देते हैं। इस तरह तो तुम दो दिन भी नहीं जी सकते।'

'मैं मर जाऊँ तो मुझे यहीं दफना देना।' वह न तो रो रहा था और न गुस्सेमें ही जान पड़ता था। बड़ी नम्र वाणी थी उसकी। 'मेरे लिए पाक परवर-दिगारसे दुआ करना कि वह मुझे माफ करदे!' किसीके समझमें नहीं आता था कि इस जिद्दी लड़केको कैसे समझाया जाय।

'कोई बुला लाओ हजरत इमामको।' रोते-रोते गुलनारने अपनी आँखें सुर्ख कर ली थीं 'मैं खुद जाती हूँ। ये उनकी बात जरूर मान लेंगे।'

'वह तो पागल है।' सरदारने अपनी लड़कीका हाथ पकड़ा स्नेहसे 'तुझे मार न बैठे। वह किसीकी बात न तो सुनता और न समझता है।' सबने आते ही उस बुड्ढेको रंगढंगसे खतरनाक पागल समझ लिया था। उनकी समझमें नहीं आता था कि क्यों सारे अरबमें वह 'पहुँचा हुआ फकीर' माना जाता है।

'माफ किया मैंने तुझे!' पता नहीं कहाँसे वह पागल खुद ही दौड़ता हुआ भीड़में घुस आया। जमालके सिरपर हाथ रखकर उसने स्नेहसे कहा—'मेरे भोले बच्चे! मैंने तुझे माफ कर दिया।'

'माफ कर दिया?' जमाल जैसे जी उठा। हृदयसे एक भार उतर गया। फकीरके पैर चूमे, इससे पहले ही वह पागल फकीर जैसे आया था, वैसे ही भीड़ हटाता भाग गया।

'तू तो सीधे खुदासे माफी माँग रहा था न ?' गुलनारने जब जमालको हँसाकर पानी पिला लिया और खजूर खिला चुकी, तब छेड़ा। हँस रही थी वह।

'मुझे खुदा ही ने तो माफ किया है।' जमाल गम्भीर बन गया— 'हजरत इमाम पहुँचे हुए फकीर हैं और उस (परमात्मा)में और उसके बन्दों (भक्तों)में फरक दूर हो चुका होता है।'

---

# हृदय परिवर्तन

'मडम ! यह मेरा उपहार है—एक हिंसक डाकूका उपहार !' मैडमने आगन्तुकके हाथसे पत्र लेकर पढ़ा। 'मैं कृतज्ञ होऊँगा, यदि इसे आप स्वीकार कर लेंगी।' चर दोनों हाथोंमें एक अत्यन्त कोमल, भारी बहुमूल्य कम्बल लिये, हाथ आगे फैलाये, मस्तक झुकाये खड़ा था।

'मैं इसे स्वीकार करूँगी।' एक क्षण रुककर मैडमने स्वतः कहा। उनका प्राइवेट सेक्रेटरी पास ही खड़ा था और मैडमने उसकी ओर पत्र बढ़ा दिया था! 'तुम अपने स्वामीसे कहना, मैंने उनका उपहार स्वीकार कर लिया है केवल एक शर्तपर—'वे कल प्रातः मुझसे मिलेंगे। उन्हें कल मिलना चाहिये।' मुक्ति फौजकी सर्वोच्च सेनानीके स्वरमें दृढ़ आज्ञा थी। चरने मस्तक झुकाया। सेक्रेटरीने उसके हाथपर-से कम्बल उठा लिया।

एक भारी कम्बल—आप उसका मूल्य समझ नहीं सकेंगे। दानेके एक-एक कणके लिए लोग तरस रहे थे। सर्वग्रासी अकालने अपनी निष्ठुर दाढ़ोंसे बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, सबल-निर्बल सभीको 'कच-कच' करके चबाना प्रारम्भ कर दिया था। टाटके एक टुकड़ेके बिना रात्रिके शीतमें अनेकानेक मानव शरीर हिम-शीतल हो जाते थे। भास्करकी रश्मि उनके अकड़े-सिकुड़े चर्ममें चेतना लौटानेमें असमर्थ होती थी। कोई उनके शवको उठानेवाला भी नहीं था। वहाँ एक रोटी

या एक चद्दरका मूल्य ही था जीवन। कम्बलके मूल्यका आप अनुमान कर सकते हैं।

चर ऊपरसे नीचे तक काली फौजी वर्दीमें यमराजका दूत प्रतीत हो रहा था। दाढ़ी-मूछें बढ़ा रखी थी उसने और उसके लाल-लाल नेत्रोंसे क्रूरता टपक रही थी। कन्धेसे बगलतक कारतूसकी पेटी झूल रही थी। बायें कन्धेपर चमड़ेकी पेटीके सहारे भारी दुनाली राइफल लटक रही और कटिमें दोनों ओर दो तलवारें बाँध रखी थीं। उसका लौह शरीर पूरा ऊँचा दैत्याकार था।

गौरवर्ण भी इतना भयंकर हो सकता है, कोई सरलतासे कल्पना नहीं कर सकता। सीधा खड़ा हो गया वह। पैरोंके भारी बूटोंने 'खट्' शब्द किया और उसने फौजी सलामी दी। दाहिनी ओर घूमकर चल पड़ा पीछे। दूर पेड़की टहनीसे उसका काला घोड़ा बँधा था। कूदकर चढ़ा और सघन वनमें अदृश्य हो गया।

'यह स्वयं डिक् तो नहीं है ?' सेक्रेटरी उसे एक टक देखता रहा था तब तक जब तक उसका घोड़ा अदृश्य नहीं हो गया।

'डिक् नहीं हो सकता।' मैंडमने उत्तर दिया—'तुम्हें समझना चाहिये कि डिक् मेरे नेत्रोंको धोखा नहीं दे सकता और वह इतना कायर भी नहीं है कि मेरे सम्मुख आनेमें भी इतने हथियारोंका भार ढोनेकी आवश्यकता अनुभव करे।'

'आपने उसका उपहार लेकर अच्छा नहीं किया।' सेक्रेटरी पहले ही विरोध करते यदि चरके सम्मुख

बोलनेका प्रश्न न होता या मैडमने एकाएक स्वीकृति न दी होती। 'वह इस बहाने अब अपने आदमी भेज सकेगा। आपने स्वयं आमन्त्रित भी कर दिया है। हम लोगोंकी गतिविधिका पता लगाकर आक्रमण कर देगा।'

'मुक्ति फौजका सैनिक भी भीरु है !' मैडमने झिड़का 'तुम्हें बार-बार बताया गया है कि परमात्माके अतिरिक्त किसीसे डरो मत। तुम्हें प्रेम करना है—एक ओरसे। छोटे-बड़े, पापी-पुण्यात्मा, सबल-दुर्बल सबसे प्रेम। सबकी सेवा करनी है और सेवाका अवसर ढूँढ़ना है।' वाणीमें ओज था, गाम्भीर्य था और था स्नेह।

'हम न तो उसे पुलिसमें ही देना चाहते हैं और न दण्ड ही।' अभी भी मैडमके कार्यका औचित्य उनकी समझमें आया नहीं था—'हम केवल उससे सावधान रहना चाहते हैं।'

'तुम्हारा बस चले तो तुम वह भी कर डालोगे।' तनिक रोषभरे स्वरमें मैडम बोल रही थी—वैसे उन्हें रुष्ट होते किसीने देखा नहीं है—'तुम सावधान रहना चाहते हो ? दूसरे शब्दोंमें तुम दूर रहना चाहते हो उससे, जिसे तुम्हारी सहायताकी सबसे अधिक आवश्यकता है। शरीर स्वस्थ होते हुए भी जिसकी अन्तरात्मा मर रही है। शैतानके अनवरत प्रहार जिसे अन्धकारमें अधिक-से-अधिक ठेलते जा रहे हैं।'

सेक्रेटरी मौन हो गये। उन्हें अपने सेनापतिमें पूर्ण विश्वास था। मैडमकी अध्यात्मिक शक्तिसे वे भली-

भाँति परिचित थे। समझ लिया उन्होंने कि कल प्रातः कोई-न-कोई चमत्कार अवश्य देखनेको मिलेगा।

'मुझे अभी डिकन जाना है। मेरा घोड़ा तैयार कर दो।' इस सत्तर वर्षकी अवस्थामें उनमें युवावस्थाका स्वास्थ्य, स्फूर्ति एवं शक्ति विद्यमान थी। घोड़ेपर तीस माइल जाकर लौट आनेका प्रोग्राम बनानेमें उन्हें एक सैकण्ड भी सोचना नहीं पड़ता था—'कल प्रातः हम डिक्के साथ सबेरेकी प्रार्थना करेंगे।'

'डिक्के साथ प्रार्थना!' सेक्रेटरी चौंके 'वह क्या प्रर्थना करना स्वीकार भी करेगा? उसे भला परमात्मा और उसकी दयासे क्या मतलब?'

'वह भी मनुष्य है, यह क्यों भूलते हो तुम।' मंडमने स्नेह-स्निग्ध स्वरमें समझाया—'उसके भी हृदय है और उसके हृदयमें भी सुख-दुख होता है। सर्वेशमें किसी-का कोई भाग नहीं है। वे सबके हैं। सभी उन्हें पुकारते हैं। सभी उन्हींसे शक्ति प्राप्त करते हैं।'

ऐसी बातें सेक्रेटरी उनसे प्रायः सुनते हैं। समझनेका प्रयत्न भी करते हैं। किन्तु जिन संस्कारोंमें उनका पालन एवं अभिवर्धन हुआ है, वे इनके विरुद्ध हैं। निर्मल हृदयकी परमात्म-पुकार तो वे समझ सकते हैं, किन्तु एक डाकूकी···।

× × ×

अचानक दक्षिणी अमेरिकामें अकाल पड़ गया था। दो वर्षसे वर्षा नहीं हुई। ऊपरसे घोर हिमपात हुआ।

वृक्ष पत्रहीन खड़े थे। पृथ्वीसे जैसे किसीने सब घास छील डाली हो। कहीं न एक तृण दृष्टि पड़ता था और न पत्ता। अब भी प्राय: नित्य रात्रिमें हल्का पाला पड़ रहा था। योंही आवागमनके प्रशस्त मार्ग नहीं थे। जो थे भी उन्हें पहाड़ियोंकी घाटियोंमें भयङ्कर हिमपातने अवरुद्ध कर रखा था। विश्वसे वह उजाड़ प्रान्त पृथक-सा हो गया था।

पक्षी हिमके उदरमें पहले ही पहुँचे थे। उस श्वेत महादैत्यने बहुतसे पशु भी भक्षण कर लिये थे। तृण-पत्रके अभावमें शेष कबतक जीवित रहेंगे। पेटकी प्रकाण्ड ज्वालाने विश्वामित्र जैसे महर्षिको श्वपचके गृहसे कुत्तेके मांसको चुरानेके लिए विवश किया था। क्षुधातुर मानवको जब एक-एक दाने अन्नके लिए तड़पकर मरना होता है—खाद्याखाद्यका भेद उठ जाता है। सभी प्रकारके पशु तीव्रतासे क्षीण हो रहे थे।

सहायताकी सहृदयता लेकर तो बहुत कम पहुँचे थे। मजदूरी बेहतर सस्ती हो गयी थी और सोनेकी खानोंका पृथ्वी गर्भमें पड़ा सोना सुदूर यूरोपके उद्योग-पतियोंको भी सुखकी नींद नहीं सोने दे रहा था। पूँजी-पति अपने आपमें बड़ा सुदृढ़ दार्शनिक होता है। विश्व रहे या मिट जाय, लोग चिल्लायें या मरें, वह अडिग रहता है। उसके सामने रहती है पूँजी और पूँजीकी अभिवृद्धि। वह खूब जानता है कि विश्वका हाहाकार, युद्ध एवं अकाल ही उसके लिए मंगलमय आशीर्वाद है। वस्तुओंकी माँग और अभावके कालमें ही वह मनमाने

दाम वसूल कर पाता है।

यूरोप तथा मध्य अमरीकाके प्रायः सभी महान उद्योगपतियोंने त्वरा की। उनके प्रतिनिधि क्षुधातुरों पर दया करके हिम एवं शैत्यकी चिन्ता छोड़कर मातृ-भूमिसे सहस्रों योजन दूर दौड़ आये। कौड़ीके मूल्य भूमि खरीद ली गयी—और पृथ्वीसे चमकीला पीला सोना पत्थरोंसे पृथक् किया जाने लगा। बिना काम किये मनुष्यको कुछ मिलता है तो वह आलसी और आवारा हो जाता है। उद्योगपतियोंने अपनी सहायता-का उद्धार—मार्ग बहुत सोच-समझकर निश्चित किया था। अन्यथा वे आये तो सहायता करने ही थे।

डिक् इस नामसे काँपते थे आगन्तुक एवं सम्पन्न निवासी। बड़ा भयंकर डाकू था वह। प्रायः सौ-सौ मील दूरके स्थानोंपर छापे मारता। सुदूर देशसे भूखसे तड़पते अमरीकनों की सहायताके लिए दयापरवश आये धनाधीशोंपर उसे तनिक भी दया न आती थी। पता नहीं उस पर सातव आसमानका मालिक क्यों अपना कहर-वरसा नहीं करता। उसे तो दोजखमें भी जगह नहीं मिलेगी।

लूट-पाट और हत्या। उजाड़ पत्रहीन बन चारों ओर छाये थे। पहाड़ोंमें गुफाओंका अभाव नहीं था। अचानक डिक् साथी मधुमक्खियोंकी भाँति भनाभन फायर करते भूतकी तरह कहींसे निकल पड़ते। लोग स्तब्ध—भयभीत हो उठते। गृहोंके द्वार बन्द हो जाते। कहीं अग्नि लगती, कहीं चीख-पुकार होती। घण्टे-आध-घण्टेमें

कोई महल अपनी साज-सज्जा और सम्पत्तिसे रिक्त हो जाता। वे सब डाकू चुटकी बजाते ऐसे गायब हो जाते जैसे खरगोशके सिरसे सींग।

सरकारने एक लाखका पुरस्कार घोषित किया था डिकको जिन्दा या मृत पकड़नेवालेके लिए। उसके साथियोंके लिए भी पृथक-पृथक पुरस्कार थे। धनाधीशोंने कई पुरस्कार स्वयं भी घोषित किये थे। पुलिसवाले आलसी होते हैं। बातें तो बड़ी-बड़ी बघारते हैं; किन्तु उस दुर्दम डाकूके सम्मुख होते ही सब सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती थी। स्थानीय जासूस मूर्ख सिद्ध हो चुके थे और यूरोपसे बुलाये गये जासूस भी कुछ अधिक बुद्धिमान नहीं प्रमाणित कर सके अपनेको।

पत्रोंको मसाला मिल गया था। भूख, अभाव, मृत्यु एवं सहायता कार्यके विवरण संक्षिप्त हो गये। बड़े-बड़े शीर्षक होते थे डिक्की डकैतियोंके। उसके सम्बन्धमें प्रचलित नाना प्रवादोंसे कालम रंगे जाते थे। क्षुधासे तड़पते, चिल्लाते, बिलबिलाते और दम तोड़ते मानव कीटोंके मध्यमें जब कोई दिव्य भवन सुन्दरियोंके अलाप एवं थिरकनसे घरोंपर अमरावतीका अवतरण करनेके दिव्य प्रयत्नमें होता, बोतलोंके कार्क खटाखट खुलते और प्यालोमें बाँके मतवाले नेत्र मछलियोंके समान तिरने लगते—पता नहीं कहाँसे दाल-भातमें मूसरचन्द डिक् और उसके साथी वीभत्स कर्णकटु भयङ्कर बन्दूकोंका फायर करते आ धमकते। हाय, कोई है बेचारे कुसुम कलेवर, मादक हृदय, मृदुल कलापूर्ण मानसोंकी रक्षा

करनेवाला इन यमदूतोंसे।

'न सभ्यता और न शिष्टता ! पूरे उजड्ड, खूँखार हैं। रसिकता और कलाका तनिक भी सम्मान करना नहीं जानते। दूर देशसे दयाप्रेरित पधारे इन धर्मावतारोंके महान् कार्यको ध्वस्त करनेमें उन्हें परमात्माका भय भी नहीं लगता। कितने आलसी हैं पुलिसवाले। मक्कार सब-के-सब डिक्से मिले हुए हैं। संसारके सारे जासूस मूर्ख हैं। उनसे एक जंगली नहीं पकड़ा जाता।' डिक्पर शिष्ट वर्गका रोष बढ़ता जाता था।

शैतान उसकी खूब मदद करता है। लोगोंने आँखोंसे देखा है शैतानको डिक्के पीछे खड़े। उसके सहचर कोई आदमी नहीं हैं। शैतानने अपने सेवक दे रखे हैं उसे। वह लूटका माल समुद्रमें फेंक आता है। केवल लोगोंको कष्ट देना है उसको। अकाल, हिमपात सैदानकी सृष्टि है। अब डिक्के रूपमें खुद शैतान ही उपद्रव कर रहा है।' अनेक किंवदन्तियाँ फैली थीं डिक्के सम्बन्धमें। कभी-कभी वे पत्रोंतक पहुँच जाती थीं।

मुक्ति फौजका सदर दफ्तर बहुत पहले दक्षिण अमरीका पहुँच गया। आते ही उसने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। चिकित्सा, औषधि-वितरण, भोजन, दान एवं वस्त्र-वितरण। दूर-दूर गाँवोंमें उनकी शाखाएँ फैल गयी थीं। पर्वतोंपर, उजाड़ वनोंमें, खुले मैदानोंमें, सब कहीं उनके कैम्प पड़े थे।

सर्वोच्च सेनाध्यक्षने पहुँचते ही निश्चय कर लिया—स्वर्ण क्षेत्रमें मुख्य कार्यालय ले जानेका। वही सबसे

दुर्दशाग्रस्त क्षेत्र था। अत्यन्त बीहड़ बन, हिमाच्छादित घाटियाँ, पगडण्डियोंके लुप्तप्राय पथ, बहुत दुष्कर था वहाँ तक पहुँचना। डाकू डिक्का भयङ्कर उत्पात उस क्षेत्रमें व्याप्त था। कोई सहमत नहीं था उधर जानेके प्रस्तावसे। यही क्या कम सहायता कार्य है? निश्चय करके हटना मैडमने सीखा ही नहीं। फौजमें मतगणना नहीं होती। उन्होंने आदेश दे दिया।

'मेरा मस्तक आज तक किसीके सम्मुख नहीं झुका है।' ऊषाकी लालिमा पूर्वके झरोखेसे झाँकने लगी थी। वृक्ष तेज हवाके झरोखोंसे काँप रहे थे। पाला पड़ी पृथ्वी उज्ज्वलसे गैरिकवर्ण होती जा रही थी। जैसे आज उसे भी विराग हो गया है मानवके आकुल क्रन्दन देखकर। एक लम्बा, पतला, गोरा पुरुष घोड़ेसे कूदकर शिविरसे बाहर निकलते ही मैडमके सम्मुख खड़ा हो गया। न दाढ़ी, न मूँछ। भव्य ललाट, प्रशस्त मुख-मण्डल। किसी सम्भ्रान्त कुलका होगा। उसकी पोशाक उसे उच्च सैनिक अधिकारी सिद्ध कर रही थी। अभी तीस-बत्तीससे अधिकका न होगा। सुपुष्ट सुन्दर शरीर दर्शकको आकर्षित कर लेता था।

मुखमें दयाका नाम नहीं और मैं जानता तक नह कि दूसरोंका आदर कैसे किया जाता है।' उसका स्वर दृढ़ किन्तु कोमल था—'मैंने आपका नाम सुना था। पता नहीं क्यों आपके लिए मेरे हृदयमें आदरके भाव हैं। कल मैं बड़ा प्रसन्न हुआ जब मेरे चरने बतलाया कि आपने मेरा उपहार स्वीकार कर लिया।

‘मैं अभिवादन करता हूँ। आज्ञा पाते ही ठीक समय उपस्थित हुआ हूँ। जीवनमें पहला व्यक्ति मुझे मिला जो डिक्को आज्ञा दे सके।’

‘मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी।’ मैडमने हाथ बढ़ाया। डिक्ने सोचा नहीं था कि इतना शक्तिशाली हाथ होगा एक महिलाका। ‘आओ हम सर्वेशकी प्रार्थना करें।’ समय हो गया था। बैण्ड बजने लगे थे। बिगुलका शब्द समाप्त होते-होते छोटेसे मैदानमें कैम्पके सब सैनिक अपनी वर्दीमें पंक्तिबद्ध खड़े हो चुके थे। मैडम सबके सम्मुख खड़ी हुई और डिक् उनसे दो कदम पीछे।

प्रार्थना प्रारम्भ हो गयी। मैडमके नेत्र आकाशकी ओर लगे और उनसे अश्रुपात हो रहा था। किसीने नहीं देखा कि कब उद्धत डाकू पीछेसे आगे बढ़ा और घुटने टेककर मैडमके पैरोंके पास बैठ गया। पता नहीं कबसे बैठा था वह। सभी उस दिव्य वातावरणमें ईश्वरीय सत्तामें डूब चुके थे। प्रार्थनाकी समाप्तिपर सबने देखा, मैडमके जूते भीग गये हैं और वह दोनों हाथोंसे रोते हुए डाकूको उठानेका प्रयत्न कर रही हैं।

‘यह पत्थरको पिघला देनेवाली शक्ति कहाँसे पायी आपमें!’ डाकू शीघ्र आश्वस्त हो गया।

‘मैं प्रेम करती हूँ।’ मैडमने स्निग्ध स्वरमें उसे सम्बोधित किया—‘मेरे भाई, मैं सम्पूर्ण प्राणियोंसे प्रेम करती हूँ!’

‘सम्पूर्ण प्राणियोंसे प्रेम?’ डाकू भौंचक्का रह गया।

उसका कण्ठ आश्चर्यने तीव्र कर दिया था—'यह कैसी बात ? अच्छे और बुरे सभी प्राणियोंसे ?'

'मैं महात्मा ईसासे और डाकू जिससे भी।' मैडमका स्वर गम्भीर हो गया—

'तुम क्या नहीं देख रहे हो ? मेरा काम प्रेम करना है, दोष देखना नहीं, मैं सेवा करती हूँ—दण्ड नहीं देती। मुझे डाक्टर बननेमें आनन्द आता है—न्यायाधीश बननेमें नहीं।'

'आप प्रेम करती हैं।' कुछ रुक-रुककर डाकू कह रहा था। उसका स्वर मन्द पड़ गया था—'डाकू डिकसे भी आप प्रेम करती हैं ?' जैसे वह किसी गहनतम समस्याको सुलझा रहा हो।

'तुम ईसाई हो न ?' मैडमने उत्तरकी अपेक्षा नहीं की—'प्रभु ईसाने तुम्हें दण्ड या घृणा करनेकी आज्ञा भी दी है ? 'एक गालपर थप्पड़ मारनेवालेके सम्मुख दूसरा गाल भी कर दो।' पढ़ा नहीं है तुमने बाइबिलमें ? अच्छे और बुरेका फैसला करनेका अधिकार तुम्हें किसने दिया ? क्या सुख पाओगे तुम इस रूखे विचारमें लगकर ?'

कुछ देरके लिए शान्ति हो गयी। सभी चुपचाप सुन रहे थे इस दिव्य वाणीको। डाकूका मस्तक झुका हुआ था। वह कुछ गम्भीरतासे सोच रहा था। सम्भवतः आत्मसात करनेके प्रयत्नमें लगा था उपदेशको।

'कहाँ पाया आपने यह प्रेम ?' मौन भङ्ग किया उसने 'मेरे हृदयमें तो वह ढूँढनेसे भी नहीं मिलता ?

कैसे मिलेगा वह ?

'जब मैं नन्हीं बच्ची थी—जबसे मैंने होश सम्भाला है' मैडमने भाव-विभोर होकर बताया—'मेरी प्रार्थनामें कभी बाधा नहीं पड़ी। रोग, शोक और स्वजनोंका पड़ा मृत शव, कोई उसे रोक न सका। यह प्रेम प्रभुकी भक्तिसे ही मिलता है और हर कोई—तुम भी उसे पा सकते हो। यह भक्ति अखण्ड भजनसे प्राप्त होती है।

---

# ममता

"मैं अरु मोर तोर तैं माया।
जेहि बस कीन्हे जीव निकाया॥"

'यह सुनहली धूप देखते हो न ? बिना प्रसंगके बीचसे ही कोई भिन्न बात उठा देना उसकी प्रकृतिमें है। वह केवल लेखनके क्षेत्रमें ही नहीं, जीवन-क्षेत्रमें भी अटपटा-सा ही है।

'बड़ी सुन्दर धूप है।' मित्रने बिना विशेष ध्यान दिये बातको समाप्त कर देना चाहा। किसी भी सौन्दर्यपर ध्यान देने योग्य उसकी मानसिक स्थिति इस समय नहीं है। वर्षा हो चुकी है। स्नान किये वृक्षोंसे मुक्ता बिन्दु झर रहे हैं। लताएँ झूम रही हैं। तृण हीरक कणोंसे अलंकृत हो रहे हैं। कौवे पतिंगोंका आखेट करनेमें लगे हैं। नन्हें पक्षी चहक रहे हैं, फुदक रहे हैं और अपने पंख झाड़ रहे हैं। आकाश अब भी आच्छन्न है। कुछ क्षण पहिले सीकर झड़ रहे थे और अब बादलोंका एक टुकड़ा सूर्यके सम्मुखसे हट गया है। धुली पत्तियाँ चमक उठी हैं। दिशाएँ जैसे पिघले सोनेमें डुबकी लगाकर निकल आयी हों। कितनी सुन्दर कितनी आकर्षक है यह धूप, किन्तु उसके मित्रको यह अच्छा नहीं लगा कि जो गम्भीर चर्चा चल रही थी, उसमें यह कविता बाधा दे। वह कविता सुननेका धैर्य लेकर आया नहीं है।

'एक क्षण इसे देख लो। यह सुवर्ण ऐसा नहीं जिससे आभूषण बनवाया जा सके। यह तो अभी बादलोंके पर्दमें जा छिपेगा।' दूसरेकी रुचिपर बहुत कम ध्यान देता है वह।

'लेकिन तुम्हारी तो आभूषणोंमें कोई रुचि है नहीं !'

मित्रको कुछ चिढ़ हुई, कुछ दुःख हुआ। जिसका आभूषण बन सकता है, वही स्वर्ण कहाँ हाथमें रहता है।'

'मनुष्य अपनेको जितना आबद्ध करेगा, उतना ही दुखी होगा।' वह फिर गम्भीर हो चला था जैसे कोई पक्षी पंख फैलाये उड़ता आवे। छाया दौड़ी आ रही थी—दौड़ी आ रही थी और ऐसा लगा, जैसे वह धूपको खदेड़ते बढ़ती चली जा रही हो। आगे भागी जा रही थी वह सुनहली धूप। उसके नेत्र अब भी उस भागती जाती धूप-पर लगे थे। मायाकी सुनहली चमकके पीछे दौड़ता बेचारा मनुष्य कोई इस धूपको पकड़ने दौड़े, उसे भ्रान्ति तथा निराशाके अतिरिक्त और क्या मिलेगा ?

'तुमको किसी चिकित्सकके पास ले चलना पड़ेगा।' मित्रने अभ्यासवश कहा। वे उससे प्रायः ऐसा परिहास कर लेते हैं।

'तुम कहते हो कि मैं पागल होने जा रहा हूँ।' अब उसने अपने मित्रको भली प्रकार घूमकर देखा। 'सच तो यह है कि हम सभी पागल हैं। कोई कुछ कम, कोई कुछ अधिक। यदि ऐसा न हो, बिना सोचे समझे अन्धाधुन्ध दौड़-धूप, हाय-हत्या संसारमें कैसे चले। अन्तर इतना ही है कि मैं तुमसे कुछ अधिक सोचनेका प्रयत्न करता हूँ।'

'तुम्हारे इस प्रयत्नने ही तुम्हारे सिरको अव्यवस्थित कर दिया है।' मित्रने एक ठहाका लगाया। 'तुम अपने प्रयत्नको बन्द कर दो तो ठीक हो जाओगे नहीं तो प्रत्येक पागल अपनेको तुम जैसा ही विचारवान मानता है।'

'मानना एक बात है और होना दूसरी बात।' उसकी यही तो विशेषता है कि परिहास, दुःख, विपत्ति चाहे जो आवे, वह अपना गाम्भीर्य भंग नहीं होने देता। प्रत्येक

स्थिति तथा बातको अपनी विचारधारामें एक गम्भीर रूप दे देना लगभग उस अमावस्याकी रात्रि-जैसा उसका स्वभाव है, जो प्रत्येक पदार्थको अपनी काली यवनिकासे ढककर अलक्ष्य एवं दुर्बोध बना देती है।

'यह रूमाल तुम्हारा है—यह तुम मानते हो।' एक क्षण रुककर उसने मित्रके हाथके सुन्दर रूमालकी ओर देखा।

'मानते हो का अर्थ ?' मित्रने तनिक व्यंगसे कहा—'तुम क्या कहना चाहते हो कि मैं इसे किसीसे माँग लाया हूँ या चुरा लाया हूँ ?'

'ऐसा नहीं !' अब वह भी मुस्कराया।' यदि कदाचित् इसे मेरा वह लिली तुम्हारे हाथसे झपट ले जाय और अपने कोचपर दौड़ जाय।'

'तुम्हारा यह झबरा कुत्ता बहुत चञ्चल है, सो मैं जानता हूँ।' मित्रने चौंककर पीछे देखा। कहीं लिली रूमाल झपटने पीछे तो नहीं आ गया है। 'मैं अपना रूमाल उसे फाड़ने नहीं दे सकता। उसके कान मैंने उस दिन उमेठ दिये थे। अब वह मेरे साथ धृष्टता नहीं करेगा।'

'सो तो नहीं करेगा।' वह फिर हँसा 'लेकिन तुम्हारा रूमाल मुझे अच्छा लगता है।'

'भला तुम्हें रेशम अच्छा तो लगा।' मित्रने रूमाल उसके ऊपर फेंक दिया। 'मेरे पास और कई हैं, तुम इसे रखो। चोरोंने रूमाल छोड़ दिये हैं। तुम्हारे काम यह आ जाय तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।'

'अब कल मेरे हाथसे इसे लिली झपट ले··· ?' उसने पूछा।

'मेरी बलासे।' मित्रने मुँह बनाया 'तुम अपना रूमाल खो दोगे।'

'जो वस्तु इतनी शीघ्रतासे तुम्हारी न रहकर मेरी हो गयी, वह तुम्हारी थी—यह तुम मानते ही तो थे।' वह फिर गम्भीर हो गया। 'मेरा लिली बहुत करेगा तो एक रूमाल या चिथड़ा झपट लेगा। लेकिन मकान, दूकान, पशु, अन्न, स्त्री-पुत्र, बन्धु-बान्धव तथा अपने शरीरको भी जो चाहे जब झपट ले सकता है—महाभैरवके उस लिलीका कान तुम उमेठ सकते हो ?'

'महाभैरवका लिली ?' मित्रकी समझमें बात आयी नहीं।

'भगवान् महाभैरव श्वानवाहन है।' उसने समझाया—'कालके कराल काले कुत्तेपर वे दण्डधर आसीन होते हैं। जिस पदार्थको महाकाल चाहे जब अपने पञ्जोंमें झपट ले सकता है, वह तुम्हारा है या मेरा है—यह ममता क्या अर्थ रखती है। भागती जाती धूपके समान सुनहली माया—उसमें ममता एक भ्रम और पागलपन ही तो है। बन्धन, दुःख, अशान्ति—और क्या मिलेगा मनुष्यको यहाँ।'

गंगाजीका प्रवाह पर्वतराज हिमालयके शिला-खण्डोंको तोड़ लेता है। वे शिला-खण्ड आरम्भमें वे टेढ़े-मेढ़े, कटे-फटे, नुकीले ही होते हैं, किन्तु पानीके प्रवाहमें लुढ़कते-पुढ़कते, घिसते-घिसाते गोल हो जाते हैं। प्रवाह उन्हें पत्थरसे शिवलिंगकी आकृति दे देता है।

वह जब बारह वर्षका ही था, पिताके लिए परलोकका बुलावा आ गया। माता एक वर्ष पूर्व ही प्रयाण कर चुकी थी। उसी अवस्थामें वह एकाकी हो गया। परिस्थितिके प्रचण्ड धक्केने जीवनके सुनिश्चित क्रमसे उसे तोड़ लिया और तबसे ही उसे धक्केपर धक्के लगते गये हैं।

अपने शैशवसे ही वह परिस्थितिके प्रखर प्रवाहमें आ पड़ा है और उस प्रवाहने उसके जीवन तथा मनको घिस-घिसाकर एक विचित्र रूप दे दिया है। यह दूसरी बात है कि उस रूपको आप शिवरूप कहेंगे या नहीं।

वह रुक्ष हो गया है स्वभावसे। जैसे किसीका सोच संकोच उसे छूता ही नहीं। गोल पत्थर जैसे अपने ही ढंगसे बैठता है, उसे औरोंके साथ मिलाकर नहीं बैठाया जाता, वैसे ही उसका अपना ही ढंग है। उसके विचार भी अपने हैं, आचार भी अपने हैं और जीवन-क्रम भी अपना है। दूसरोंसे उसका कोई मेल नहीं है और जहाँ मेल है, वहाँ दूसरोंको ही वह मेल बैठाना पड़ता है। वह तो गोल पत्थर जैसा है। साहित्यके शब्दमें कहना हो तो वह मौलिक है, विचारके क्षेत्रमें और जीवनके क्षेत्रमें भी।

'जिसे अपना मानो, वह पराया सिद्ध होता है।' जिससे मोह ममता करो, वह दुःख देता है। हम आप भी ये बातें पढ़ते और सुनते हैं, किन्तु जिसे पद-पदपर इसका तीक्ष्ण अनुभव हुआ हो, उसका कोई नहीं है, वह किसीका नहीं है। वह वैसे सहृदय है, दयालु हैं, अपने बस भर दूसरोंकी सेवा-सहायता करता है, लोग उसका सम्मान करते हैं, उसे अपना मित्र कहनेमें गौरव मानते हैं, पर यह सब होकर भी जैसे कुछ नहीं है। वह मोह—ममतासे जैसे निर्लिप्त है।

कोई बीमार हो जाय—वह रात-रात जग कर सेवा करेगा, लेकिन उससे पूछते कि रोगीके कष्टसे उसका कितना सम्बन्ध है ? वह कहेगा—'यह तो प्रारब्ध है, इसे तो भोगना ही ठहरा।' कोई मर जाय, उसके भालपर

रेखा तक नहीं आती। वह कह देता है-' जीवनका तो यह स्वाभाविक परिणाम है।' जहाँ वह रहता है, उसके स्नेही, सुहृद जैसे सब उसके अभिन्न ही हैं। जहाँसे चल देता है, सन्देह ही है कि उसे किसीकी याद भी कभी आती होगी। सब जानते हैं, वह कहींसे कब चल देगा, इसका कुछ ठिकाना नहीं।

उसका मित्र—उसके वैसे तो अनेक मित्र हैं, यह कहनेसे अधिक अच्छा यह है कि अनेक लोग हैं जो उससे अपनी मित्रता मानते हैं, किन्तु यह रमेश उससे बहुत हिलमिल गया है। यह उसका बहुत सम्मान करता है और इसपर उसका भी स्नेह है।

रमेशके घर चोरी हो गयी है। बेचारा रमेश वह परिवार रखनेवाला व्यक्ति है और आज समाजमें मध्यम श्रेणी ही तो सबसे अधिक आर्थिक कष्टमें होती है। गरीब तो फटे हाल या नंगे भी रह लेते हैं। उसका काम मजदूरी करके मजेसे चल जाता है और मध्यम श्रेणी—समाजके शिष्टाचारकी पूरी मार इसी श्रेणीपर तो पड़ती है। कपड़े-लत्ते, बाहरी टीम-टाम, आगन्तुकोंका स्वागत-सत्कार, घरमें भले 'भूनी भाँग' न हो, परन्तु यह सब किये बिना गृहस्थकी मर्यादा तो नहीं रहती। ऋणका भार चाहे जितना बढ़ता जाय, अपनी सामाजिक स्थिति का माध्यम तो उसे बनाये ही रखना पड़ता है। ऐसी मध्यम श्रेणीका रमेश, थोड़ी आय, भरा पूरा परिवार और उसपर चोरी हो गयी। घरके कपड़े, बर्तन तथा पेट काट-काटकर बरसोंमें किसी प्रकार बनवाये गये स्त्री तथा कन्याके—आभूषण चोर किसीका सुख-दुःख जानते तो क्या चोरी करते?

रमेश क्या करे। उसके घर चूल्हा नहीं जला है। स्त्री और कन्याके नेत्र सूखते नहीं। रमेश किसे कैसे धैर्य दे। उसके मनमें क्या कम व्यथा है ? उसका तो जैसे सर्वस्व ही चला गया है। उसने पुलिसको सूचना दे दी है। लेकिन पुलिसके लोग तो अपने ढर्रेसे चलते हैं। उन्हें तो केवल अपनी डायरी पूरी कर देनी है। दो-एक दिन इधर-उधर चक्कर लगावेंगे और फिर उनका बँधा क्रम है—पूरा प्रयत्न किया गया, लेकिन कुछ पता नहीं लगता।'

रमेशको आश्वासन चाहिये। उसके ये मित्र—दुःखमें, आपत्तिमें रमेशको अनेक बार इनसे आश्वासन मिला है। घरमें तो अब बैठा ही नहीं जाता। वहाँ तो परिबारके भरे दृग अपने हृदयको और क्षुब्ध कर देते हैं।

'यही प्रारब्धमें था। यदि मिलना ही होता तो वस्तुएँ जातीं क्यों।' ऐसी बातें रमेश न जानता हो सो बात नहीं है। लेकिन मित्रके पास भी आश्वासन देनेका और क्या उपाय है। समय ही शोकको दूर करता है। इस समय तो रमेशके लिए समय अपेक्षित है। उनका मन कुछ समय किसी विचारमें लगा रहे……।

एक बात और—कुछ सन्धि—क्षण होते हैं। किसीके हृदयपर किसी कारण जब तीव्र आघात लगता है—वह सन्धि-क्षण होता है। उस समय उसकी आसक्ति ममताकी भित्ति डगमगाती होती है। कोई उस स्वर्णिम क्षणको सम्हाल सके, सचमुच वह स्वर्णिम क्षण बन जाता है। विशुद्ध विचारकी उज्ज्वल किरण अन्तरको आलोकित करती प्रगट हो जाती है। रमेशका दार्शनिक मित्र इस तथ्यको जानता है। वह चाहता है कि इस सन्धि-क्षणको

शक्य हो तो सम्हाल लिया जाय।

× × ×

'वस्तुएँ अपनी नहीं हैं और दूसरेकी भी नहीं हैं। वस्तुएँ तो जगतके स्रष्टाकी हैं।' रमेश आज अपने मित्र-की बात गम्भीरतासे सोचने लगा है। वस्तुओंको अपनी या दूसरेकी मान लिया गया है और यह मानना ही दुःखका कारण है। वैसे वस्तुएँ किसीको सुख या दुःख नहीं देती, कदाचित ही दे पाती हैं।'

'कितनी कठिनाई हुई थी मकान बदलनेमें। आज कल किरायेके मकान सरलतासे कहाँ मिलते हैं। फिर अपनी सुविधाका, अपने मेल-जोलके स्थान में……।' रमेश भाड़ेके मकानमें रहता है। अभी पिछले वर्ष वह जिस मकानमें रहता था, वर्षामें वह मकान गिर गया। बड़ा मक्खीचूस था उस मकानका स्वामी। किराया लेने पहली तारीखको आ धमकता था और मकानकी मरम्मत-की बात सुनना ही नहीं चाहता था। पुराना मकान, अन्ततः बिना मरम्मत वह कहाँ तक टिके। वर्षाका पानी छतसे दीवालोंमें भरा और ··। कुशल हुई, रमेश चार दिन पहिले ही इस दूसरे मकानमें आ गया था।

मकान न मिलनेकी कठिनाई हुई सही, किन्तु जिस दिन मकान गिरा ··' रमेशको स्मरण है कि उस दिन उसे प्रसन्नता ही हुई थी। उसने मकानके स्वामीको उदास सवेरे उधरसे जाते देखा तो व्यङ्ग किया था। मकानमें रहता वह था और मकान गिरनेका दुःख हुआ था मकानके स्वामीको, जो कभी कदाचित ही उसमें घण्टे-आध-घण्टे बैठ सका हो। यह ममताका—अपना

माननेका ही तो दुःख था।

'मेरे यहाँसे जो वस्त्र और आभूषण चोरी गये हैं' अब रमेश ठीक विषयपर विचार करने लगा। 'मेरी स्त्री और कन्या कितना उपयोग करती हैं उसका? वे प्रायः पेटियोंकी शोभा बढ़ाया करते थे। कभी अवसर-विशेष-पर···लेकिन क्या अवसर-विशेषपर उनके बिना काम नहीं चल सकता?' उसने अपने आपसे पूछा और ऐसा लगा, जैसे हृदयपर छाया हुआ शोकका कुहासा फट गया है। शोक—तमस है, अन्धकार है; और विचार है प्रकाश-सत्त्व प्रकाश और अन्धकार एक साथ रह कैसे सकते हैं।

मेरा क्या गया? मेरी स्त्री या कन्याका ही क्या गया? रमेशने एक स्वस्थ दृष्टिसे इधर-उधर देखा। उसके पास रहनेके लिए अब भी वही मकान है। भोजनके लिए अन्न है, नित्य उपयोगके लिए पर्याप्त वस्त्र हैं। आगे कभी···पर आगे कभी कोई असुविधा होगी, इसके लिए अभीसे रोने बैठना कौन-सी बुद्धिमानी है। 'वस्तुएँ तो उसकी नहीं हैं, किसीकी नहीं हैं, फिर मेरी वस्तुएँ गयीं का क्या अर्थ?

'तस्कराणां पतये नमः?' रमेश चौंका। उसके मित्रने पीछेसे आकर उसके कन्धेपर हाथ रख दिया। सम्भवतः उसने रमेशके मनकी स्वस्थ स्थिति लक्षित कर ली है। मित्र है श्रीकृष्णका आराधक। रमेश उसे कभी-कभी व्यङ्गमें 'तस्कराणां पतये नमः?' कह-कह खिझाने-की चेष्टा करता था। आज मित्र उसी श्रुतिको उससे क्यों कह रहा है?

'वस्तुएँ जिसकी हैं, वही देता है और लेता भी है।'

उसने रमेशके कन्धेपर हाथ रखे हुए ही कहा। 'सब उसी सर्वरूपके रूप हैं। वह सर्वेश ही समस्त रूपोंमें व्याप्त है। चोर भी वही, चोरीकी वस्तु भी वही। उसकी वस्तुको अपनी मानना ही माया है और जब कोई इस मायामें आबद्ध होता है दुःखी तो होगा ही।'

'अपनी ही वस्तुएँ वह चुराता क्यों है ?' रमेशने सहज भावसे पूछा।

'किसीपर कृपा करनेके लिए।' वह तनिक मुस्कराया—'चुराना तो उसका स्वभाव है। तुम उसे अवसर दो तो वह तुम्हारा शोक, सन्ताप और स्वयं तुम्हें भी चुरा लेगा। यह तो श्रीगणेश किया है उसने।'

'मैं अवकाश दूंगा ?' रमेशकी जिज्ञासा उचित ही है।

'मैं मेराको दृढ़तासे पकड़े रहोगे, इसीकी रात-दिन चौकीदारी करोगे तो उसे अवकाश कैसे मिलेगा ?' उसने गम्भीरतासे कहा—'तुम तनिक असावधान हुए और उसने चुराया।'

'उसने चुराया !' रमेशके नेत्र भर गये। उसके पदार्थ उस सर्वेशने चुराये ? उस सर्वरूपके अतिरिक्त और विश्वमें है क्या। यह दुःख, यह शोक, यह व्याकुलता, वह सब चुरा सकता है···पर अब कहाँ है शोक, दुःख, व्याकुलता ? रमेशके नेत्रोंसे टप-टप बिन्दु गिर रहे हैं, किन्तु क्या वे शोकके हैं ? जब 'मैं और मेरा' की माया कोई उस चिरचपलके चरणोंमें चढ़ा देता है—शोक उसकी छायाका भी स्पर्श कर सकता है ?

---

# राधेश्यामका कुआँ

'इस कुएँमें राधेश्याम कहना होता है। राधेश्याम कहो।'

मेरे साथीने मुझे प्रेरित करते हुए स्वय कुएँमें मुँह झुकाकर बड़ी लम्बी ध्वनिसे कहा 'रा-धे-श्या-म'।

मैं देख रहा था कि जो यात्री स्त्री या पुरुष आगे जाते थे, सभी उस कुएँमें सिर झुकाकर राधेश्यामकी यथासम्भव ऊँची ध्वनि लगाते थे।

कुएकी जगत कुछ ऊची थी। मार्ग नीचा होनेके कारण कुएँका मुख कमरसे ऊपर ही पड़ता था। ऊपरसे देखनेपर कुआँ साधारण पुरानी ईंटोंका बना था। उसकी जगत जीर्ण हो चुकी थी। घासफूस उग आये थे।

मैंने एक बार झाँककर कुएँके भीतरी भागको देखा। जल था तो सही, पर बहुत नीचे। बड़ और पीपलके पौधोंने भी अपना आसन जमा लिया था। ईंटें टूट-फूट गयी थीं। भीतर एक छोटी चिड़िया बैठी थी। दो मैनाओंने फड़फड़ाकर बतलाया कि इस समय तो यह हमारा राजभवन है।

जितनी देर मैं कुएंको देख रहा था, उतनी देरमें कई यात्री आकर मेरी बगलसे उसमें 'राधेश्याम' की ध्वनि लगा गये। उस कूपकी दशा देखनेका कष्ट कोई क्यों करने लगा? सिर झुकाया, ध्वनि लगायी और अपना मार्ग लिया।

मेरे साथीने पुनः ध्वनि लगानेकी प्रेरणा की। मैंने भी उच्च स्वरसे कहा 'रा-धे-श्या-म'। प्रतिध्वनिने मेरे कर्णकुहरोंको गुञ्जित कर दिया 'रा-धे-श्या-म'! हम

फिर परिक्रमा-पथपर बढ़ चले।

× × ×

श्रीवृन्दावनकी पावन बीथियोंमें विचरण करनेवाले प्रेमरस-छके पागलोंका कभी अभाव नहीं रहा है। उस प्रेमकी भूमिकी रजमें ही कुछ ऐसी मादकता है। प्रेमके देव उस रजमें स्वयं नृत्य करते थे, उसे अंगोंमें लपेटते और इधर-उधर देखकर, दूसरोंकी दृष्टि बचाकर उसे चख भी लेते। आज भी भावुक भक्त वहाँ रासेश्वरी और रासविहारीकी नित्य रास-लीलाका दर्शन पाते हैं।

हम तबकी बात कहने वाले हैं, जब वृन्दावन आज-सा बाजार न था। एक-दो विरक्त महापुरुष वृक्षोंके नीचे या फूसकी झोंपड़ियोंमें रहते थे। एक भी पक्का तो क्या, कच्चा मकान भी नहीं था। वे साधु या तो पासके ग्रामोंसे मधुकरी कर लाते या वहीं उन्हें कोई कुछ दे जाता। मयूर, बन्दर तथा जंगली गायोंकी भरमार थी। करीलकी कुञ्जोंमें जहाँ-तहाँ हिरनोंके झुण्ड खेलते रहते थे।

उस समय भी दूर-दूरसे पैदल चलकर बहुत-से प्रेमी दर्शनार्थ वहाँ आते थे। यात्री मथुरासे प्रातः वृन्दावन आते। दर्शन, परिक्रमा आदि करके सन्ध्या तक अवश्य ही लौट जाते। उस सुनसान जंगलमें उस समय वही रहते थे जिन्हें शरीरका कोई मोह न था। बाह्य सुखोंकी कोई अपेक्षा न थी।

उन्हीं गिने-चुने लोगोंमें एक राधेश्यामजी बावरे भी

थे। दिन-रात उच्च स्वरसे राधेश्यामकी ध्वनि लगाना और पागलोंकी भाँति यहाँसे वहाँ घूमा करना—यही उनका काम था। इसीसे व्रजके लोगोंने उनका नाम 'राधेश्याम बावरा' रख दिया।

गौर वर्ण, पतला पर सुदृढ़ शरीर तथा तेजोमय मुखमण्डल राधेश्यामजीके चरणोंमें मस्तक झुकानेको विवश कर देता था। केवल एक कौपीन ही उनका सब आच्छादन थी। किसी एक वृक्षके नीचे किसीने उन्हें दो रात्रि सोते नहीं देखा।

बच्चोंकी भाँति दौड़ते, चाहे जहाँ भी धूलिमें लेटने लगते। सर्वदा खिलखिलाते रहते। गोप चरवाहे लड़के उन्हें देखते ही तालियाँ बजाकर कहने लगते 'राधेश्याम, राधेश्याम' और आप भी उनके समीप उछल-उछलकर नाचते, कूदते और गाते 'राधेश्याम, राधेश्याम'।

इन महापुरुषकी मित्रता बस इन चरवाहों, बन्दरों, मयूरों, मृगों, गायों और विशेषतः छोटे बछड़ोंसे थी। यात्रियोंसे तो बोलते नहीं थे। बहुत प्रसन्न हुए तो 'राधेश्याम' कह दिया। नहीं तो दूसरी ओर दौड़ छूटे। वैसे मौन नहीं थे। छोटे बछड़ोंसे, पेड़ोंसे तथा करीर-लताओंसे कभी-कभी जाने क्या घण्टों बातें करते रहते थे।

राधेश्यामजी केवल चरवाहोंकी रोटियाँ ही ग्रहण करते, वह भी यदि बिना माँगे मिल जायँ। चरवाहे गोप इन्हें ढूढ़ते रहते थे कि आज ये किधर वनमें दौड़ते फिरते हैं। गोप बड़े प्रेमसे अपनी सूखी रोटियाँ, नमक,

साग, मक्खन, छाछ जो भी घरसे लाते, राधेश्यामजीको ढूँढ़कर देते। जो मौजमें आयी ले लेते, नहीं सिर हिला देते।

किसीको कुछ पता न था कि ये विलक्षण अवधूत कहाँसे व्रजमें आये। इनकी जन्मभूमि कहाँ है। किसीको यह जाननेकी आवश्यकता भी न थी।

कभी-कभी गोप अपनी व्रजभाषामें पूछते 'बावरे। हम तोय रोटी ना देंय तो कहा खायगो ?' अर्थात् पगले। हम तुझे रोटी न दें तो क्या खायगा ? आप तुरन्त कहते 'जाको घर है बाय तो खवावनई परैगी।' जिस (श्रीकृष्ण) का यह घर है, उसे तो खिलाना ही पड़ेगा।

एक दिन किसीने पूछा—'महाराज। आप पूजा क्यों नहीं करते ?' आप हँस पड़े 'राधेश्याम' की ध्वनि लगाकर। सचमुच यह क्या कम पूजा है। पूजाका सार सर्वस्व तो है ही।

ज्येष्ठकी दोपहरी थी। रमणरेतीके पास इधर-उधर मीलों जलका कहीं नामोनिशान न था। दावानल प्रभृति कुण्ड पर्याप्त दूर थे और सूख चुके थे। यमुनाजी उन दिनों वहाँसे दूर हट गयी थीं। आसपासके वृक्ष भी सूख गये थे। पशु-पक्षियोंका इस ऋतुमें उधर निवास ही नहीं था।

भूमिपर मार्तण्डकी किरणें अग्नि-वृष्टि कर रही थीं। उष्ण पवन धूलिके साथ शरीरको झुलसाये जा रहा था। किरणोंकी गोदमें वेदान्तके विवर्तवादके अनुसार गगन समुद्र हिलोरें ले रहा था।

इस भीषण समयमें भी एक अवधूत रमणरेतीमें अपनी मस्तीसे उछल रहा था। वर्षाके सीकरोंमें नृत्य करते मयूरकी भाँति वह कूदते हुए गा रहा था 'राधेश्याम, राधेश्याम, राधेश्याम।' उसपर न तो धूपका प्रभाव था और न वायुका। मानो वह प्रकृतिका अधीश्वर हो तथा प्रकृति उसके लिए अनुकूल बर्ताव कर रही हो।

इसी समय कोई एक यात्री परिक्रमा मार्गसे निकला। यात्री सुकुमार तथा किसी उच्च एवं सम्पन्न कुलका था। वह मथुरासे आज ही वृन्दावन आया था। दूसरे स्थलोंके दर्शन तथा महात्माओंके सत्संगमें देर हो गयी। उसे क्या पता था कि परिक्रमामें जल नहीं है। सन्ध्याको मथुरा लौटना अनिवार्य था, अतः दोपहरीमें तनिक कष्ट उठा कर भी उसने परिक्रमा करनेका निश्चय किया था।

प्यासके मारे यात्रीका मुख सूख गया था। ऊपरसे धूप और उष्ण वायु। एक-एक पद चलना भारी हो गया। आकुलतासे वह चारों ओर दृष्टि दौड़ाता, पर कहीं भी जलका चिह्न न था। उसे जीवनसे निराशा हो गयी। इसी समय यात्रीने अवधूतजीको देखा। सम्पूर्ण शक्ति एकत्र कर उनकी ओर जल माँगने बढ़ा। वह उन तक पहुँच भी न पाया था कि मूर्छित होकर गिर पड़ा।

अवधूतजीने उस यात्रीको उठाया। उनके अमृत-स्पर्शने चेतना लौटा दी। फिर भी प्यासके मारे वह बोल न सका। बगलमें ही एक पुराना सूखा कुआँ था। यह प्रसिद्ध था कि गोपालने सखाओंके प्यासे होनेपर उसे वंशीसे बनाया था। इस समय तो वह एक सूखा गड्ढा मात्र था।

अवधूतकी दृष्टि एक बार ऊपर उठी। कुछ सोच-कर उन्होंने कुएँमें सिर झुकाकर उच्च स्वरसे पुकारा 'राधेश्याम।' सहसा कुआँ मुख तक जलसे भर गया। यात्रीने जलपान किया। उसे जीवनदान मिला।

× × ×

दूसरे दिन वही यात्री मथुरासे फिर वृन्दावन लौटा। बहुत अन्वेषण करनेपर भी वे अवधूत उसे नहीं मिले। फिर कभी गोप चरवाहोंने भी उन्हें नहीं देखा। लोगोंका अनुमान हैं कि इस चमत्कारसे जो प्रसिद्धि हुई, उसके फलस्वरूप जनसमुदायके पीछे पड़नेके भयसे वे कहीं गुप्तरूपसे रहने लगे। उस यात्रीने उस कुएँको ईंटोंसे बँधवा दिया।

कुएँमें अब तक जल है। भक्तोंका विश्वास है कि कुएँमें राधेश्यामकी ध्वनि लगानेसे भगवान् उस अपने परमप्रेमीकी स्मृतिसे प्रसन्न होते हैं।

---

## श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवासंस्थानके प्रकाशन—

**भगवान वासुदेव**—(श्रीकृष्णका मथुरा-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४०२, सजिल्द, मूल्य १[illegible]

**श्रीद्वारिकाधीश**—(श्रीकृष्णका द्वारिका-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४००, सजिल्द, मूल्य १[illegible]

**पार्थ-सारथि** (श्रीकृष्णका हस्तिनापुर-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४३६, पक्की जिल्द, मूल्य १२)००
रक्सीनयुक्त (बिना गत्तेकी जिल्द) मूल्य १०)००

**शिव-चरित**—डिमाई आ०, पृष्ठ ४२८, सजिल्द, मूल्य ११)२५

**शत्रुघ्नकुमारकी आत्मकथा**—
डिमाई आकार, पृष्ठ २१२, सजिल्द, मूल्य ७)५०

**हमारी संस्कृति**—डिमाई आ०, पृ० २६०, सजिल्द, मूल्य ७)२५

**कर्म-रहस्य**—डिमाई आकार, पृष्ठ १८४, मूल्य ४)००

**आञ्जनेयकी आत्मकथा**—(श्रीहनुमान-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ३१२, सजिल्द, मूल्य ६)००

**साध्य और साधन** (साधना, भगवद्दर्शन, गुरुतत्व)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ३८४, सजिल्द, मूल्य १०)००

**रामचरित भाग-१**— सजिल्द, पृष्ठ ३८३, मूल्य १०)००

**रामचरित भाग-२**— सजिल्द, पृष्ठ २७२, मूल्य ८)२५

**राम-श्यामकी झाँकी भाग-१** —पृष्ठ १६०, मूल्य २)००

„ „ भाग-२ पृष्ठ १३२, मूल्य १)७५

**श्यामका स्वभाव**— पाकेट आकार, पृष्ठ ९६, मूल्य १)२५

**हमारे धर्मग्रन्थ**— पाकेट आकार, पृष्ठ ६७, मूल्य १)००

**हिन्दुओंके तीर्थ-स्थान**—पाकेट आ०, पृष्ठ २७४, मूल्य ३)५०

**शिव-स्मरण**— पाकेट आकार, पृष्ठ ८५, मूल्य १)२५

**हमारे अवतार एवं देवी-देवता**—
पाकेट आकार, पृष्ठ १०८, मूल्य १)५०

**व्रजका एक दिन**— पाकेट आकार, पृष्ठ ११०, मूल्य १)७५

**उन्मादिनी यशोदा**—पाकेट आकार, पृष्ठ १६०, मूल्य २)५०

**सांस्कृतिक कहानियां प्रत्येक भाग**—
पाकेट आकार, पृष्ठ १४८, मूल्य २)००

---

इस पुस्तकके ६४ पृष्ठ भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर उपलब्ध किये गये कागजपर मुद्रित-प्रकाशित हैं।